ओ३म्

वैदिक रहस्य- -द्वितीय भाग ❀

पं वसिष्ठो हवते पुरोहितो * * * *
न्द्राय पुरोहितः ॥ ऋग्० १० । १५० । ५ ॥



वसिष्ठनन्दिनी

सम्पादक—

शिवशङ्कर शर्म्मा,

काव्यतीर्थ

जॉब प्रिंटिंग प्रेस अजमेर में मुद्रित

त्यार संवत् १९६८ वि०
सन् १९११ ई० (मूल्य ।-) (डा० म०) ।।

वक्तव्य ।

प्रिय आर्य्य भ्राताओ ! देखिये ! वेदों में कैसे २ महारत्न खचित हैं । इस वसिष्ठ-नन्दिनी को ध्यान से पढ़िये । मित्र और वरुण के पुत्र वसिष्ठ क्यों कहाते ? इनकी माता उर्वशी क्यों ? क्षत्रियों से इनका घनिष्ठ संबंध कैसे हुआ ? राजपुरोहित बनकर ये चारों युगों में जीवित कैसे रहे ? इनके निकट नन्दिनी कामधेनु सदा क्यों रहा करती ? विश्वामित्र और वसिष्ठ में महासंग्राम क्यों ? क्या वसिष्ठ वरुण के गृह पर चोरी करने को गए थे ? इत्यादिकों का क्या सत्य आशय है सो इस छोटीसी पुस्तक में दिखलाया गया है । यह ग्रन्थ—

पर्जन्यकारकेष्टि

के स्मरण में प्रकाशित किया गया है, जिस को झालड़ी सुरानी, जिला जयपुर निवासी, सम्प्रति अजमेर प्रवासी सेठ नन्दरामजी के पुत्र सेठ श्रीयुत लादूरामजी ठेकेदार, जिन्होंने संवत् १९५५ वि० में अपनी ओर से भी एक बृहत् यज्ञ किया था और श्रीमान् आगरा-निवासी कन्हैयालालजी जो प्रथम अजमेर डी. ए. वी. हाई स्कूल के हेडमास्टर थे और अब गवर्नमेंट ब्रैंच स्कूल अजमेर के हेडमास्टर हैं इन दोनों महाशयों ने निज और जनता की सहायता के द्वारा अच्छे प्रकार चारों वेदों के संपूर्ण मन्त्रों से संवत् १९६८ भाद्र में ११ दिवस करवाया और यज्ञेश्वर परमात्मा की कृपा से यज्ञ के चतुर्थ दिन से बराबर वर्षा भी होने लगी । धन्यवाद उस ईश्वर को उसी को यह पुस्तक भी समर्पित है ॥

मिथिला देश-निवासी—

पण्डित शिवशंकर शर्म्मा,

ता० १।१०।१९११.] काव्यतीर्थ.

॥ ओ३म् ॥

देश में अनेक त्रुटियां हैं, गवेषणा नहीं की जाती। शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा महाभारत, रामायण, पुराणों में बहुतसी ऐसी आख्यायिकाएं उक्त हैं जिनसे बड़े २ मानवहितकारी सिद्धान्त निकलते हैं क्योंकि वेदों से वे आए हुए हैं किन्तु कथा के स्वरूप में वे वैदिक सिद्धान्त लिखे गए हैं अतः उनका आशय आज सर्वथा अस्तव्यस्त होगया है। उदाहरण के लिये मैं वेदों के सुप्रसिद्ध वसिष्ठ और अगस्त्य दो ऋषियों को प्रस्तुत करता हूं। क्या यह सम्भव है कि दो पुरुषों के बीज मिलकर बालकों को उत्पन्न करें, वह भी साक्षात् मातृगर्भ में नहीं किन्तु स्थल और घट में उत्पत्ति हो ? उर्वशी के दर्शन मात्र से मित्र और वरुण दो देवों का चित्त चञ्चल होजाय ? उनसे तत्काल ही एक या दो सुभग बालक उत्पन्न हों और तत्काल ही देवगण उन्हें कमल के पत्रों पर बिठला उनकी स्तुति पूजा करें ? उनमें से एक बालक सम्पूर्ण सूर्यवंशी राजाओं का पुरोहित बन सृष्टि की आदि से प्रलय तक अजर अमर हो एक रूप में सदा स्थिर रहे ? क्या यह सम्भव है कि वसिष्ठ की एक गौ जो चाहे सो करे ? हजारों प्रकार की सेनाओं को वह स्वयं रचले पृथिवी के समस्त पदार्थ उसकी आज्ञा में हाथ जोड़कर

खड़े रहें इस शबला गौ के लिये वसिष्ठ और विश्वामित्र में तुमुल संग्राम हो ? वसिष्ठ के शतपुत्रों को विश्वामित्र मरवा दे, इस शोक में वसिष्ठ सुमेरुपर्वत के सब से ऊपर के शिखर पर से गिरें तो भी न मरें। अग्नि उन्हें न जलावे समुद्र इनसे डरजाय। हाथ पैर और सब अंगों को बांध नदियों में डूबने को जायँ किन्तु नदियां भाग जायँ इनके बंधन को तोड़ डालें इत्यादि शतशः कथाएँ वसिष्ठ के विषय में जो कही जाती हैं उनका क्या आशय है ? क्या सचमुच ये वसिष्ठ और अगस्त्य दो महान् ऋषि वश्या पुत्र हैं ? उर्वशी कोई वेश्या है ? क्या मित्र और वरुण कोई ऐसे तुच्छ देव हैं ? जो झट स्त्री पर मोहित होजाते ? इत्यादि। क्या इनकी सत्यता के अन्वेषण के लिये कभी हम प्रयत्न करते हैं ? निःसन्देह यह अद्भुत कथा है। इससे अति गूढ बातें निकलती हैं। मित्र और वरुण के पुत्र वसिष्ठ और अगस्त्य की आख्यायिका से राज्य व्यवस्था सम्बन्धी एक परम उपयोगी वैदिक सिद्धान्त विनिःसृत होता है अतः मैं इस भाग में इसको प्रथम दरसा पश्चात् वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं का आशय प्रकट करूंगा इसको ध्यान से आप लोग पढ़ें ॥

इसके लिये प्रथम यह जानना आवश्यक है कि स्वतन्त्र और अज्ञानी राजा से देश की कितनी हानि हुई है और होरही है। अतएव पृथिवी पर के सभ्य देशों में आज कल दो प्रकार के राज्य हैं। एक प्रजाधीन दूसरा स्वा-

धीन अर्थात् जिसमें राजा को सभा की आज्ञा का वशवर्ती होना पड़ता है। सर्व विद्वानों की प्रायः इसमें एक सम्मति है कि प्रजाधीन ही राज्य चाहिये और यही मनुष्यता है ज्यों २ मनुष्यता की वृद्धि होगी त्यों २ स्वयं राज्य व्यवस्था शिथिल होती जायगी क्योंकि प्रत्येक मानव निज कर्त्तव्य को अच्छे प्रकार निबाहेगा। इतिहास से विदित होता है कि जब २ राजा उच्छृङ्खल हुआ है तब २ महती आपत्ति प्रजाओं में आई हैं। अतः वेद में ऐसा वर्णन आता है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥
यजु० २०। २५॥

ब्रह्म=ज्ञान, विज्ञान, परमज्ञानी जन, धर्म्मतत्त्वज्ञ, धर्म्माध्यक्ष पुरुषों की महती सभा इत्यादि। क्षत्र=बल, प्रजाशासक वर्ग, धार्म्मिक बली, प्रजा शासकों की महती सभा इत्यादि। प्रज्ञेषम्=प्रजानामि जानता हूं। देव=प्रजावर्ग, शास्य प्रजाएँ। अग्नि=परमात्मा, ब्राह्मण, अग्नि होत्रादि कर्म्म। यद्यपि वैदिक शब्द लोक में भी प्रयुक्त हुए हैं परन्तु लोक में उन वैदिक शब्दों के अर्थ में बहुत कुछ परिवर्तन होगया है वेदों के अर्थों के विचार से वे २ अर्थ अच्छे प्रकार भासित होने लगते हैं। अथ मन्त्रार्थ—(तम्+लोकम्+पुण्यम्+प्रज्ञेषम्) उस लोक

को मैं पुण्य समझता हूं। (यत्र+ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च) जहां ज्ञान और बल अथवा ज्ञानी और बली अथवा धर्म्म-व्यवस्थापक विद्वद्वर्ग और उस व्यवस्था के अनुसार शासन करनेहारे राजगण (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार मिलकर परस्पर सत्कार करते हुए (सह+चरतः) साथ विचरण करते हैं, साथ ही सर्व व्यवहार करते हैं। (यत्र+देवाः) और जहां प्रजावर्ग (अग्निना+सह) ईश्वर, ज्ञानी और अग्निहोत्रादि शुभ कर्म्म के साथ विचरण करते हैं अर्थात् जहां सर्व प्रजाएँ आस्तिक हो शुभ कर्म्मों को यथा विधि करते हैं और ज्ञानियों के पक्ष में रहते हैं। वही देश वही लोक पवित्र है पुनः—

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यैते स्वाहा॥
यजु० ३२। १६॥

यह भी एक प्रार्थना है (इदम्+ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च) यह ज्ञानी और शासक वर्ग (उभे+मे+श्रियम्+अश्नुताम्) दोनों ही मिलकर मेरी सम्पत्ति को भोग में लावें (मयि+देवाः+उत्तमाम्+श्रियम्+दधतु) मुझ में समस्त शुभाभिलाषी प्रजावर्ग उत्तम श्री सम्पत्ति स्थापित करें (तस्यै+ते+स्वाहा) हे सम्पत्ति! तुम्हारे लिये मेरा सर्वस्वत्याग है स्वाहा=स्व+आहा। स्व=धन। आहा सब प्रकार से त्याग। अपने स्वत्व को सर्वप्रकार से त्याग करने का

नाम स्वाहा है। उन पूर्वोक्त ही दो मन्त्रों में नहीं किन्तु यजुर्वेद के बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र दोनों को मिलकर व्यवहार करने का वर्णन आता है दो चार उदाहरण ये हैं—

स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु। यजु० १८। ३८॥

वह ब्रह्म और क्षत्र हमको पाले। यही वाक्य इस अध्याय की ३९, ४०, ४१, ४२, ४३वीं कण्डिकाओं में आया है॥

सोमः पवते ऽस्मै ब्रह्मणे ऽस्मै क्षत्राय। ७। २१॥

परमात्मा इस ब्रह्म और क्षत्र को पवित्र करता है॥

ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व। ३८। १४॥

हे भगवन्! ब्रह्म और क्षत्र को उन्नत करो। पुनः प्रार्थना आती है कि—

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह। अस्मै ब्रह्मणे ऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा। यजु० १८। ४४॥

(भुवनस्य+पते+प्रजापते) हे सम्पूर्ण-विश्वाधिपति प्रजापति परमात्मन्! (यस्य+ते उपरि+गृहाः) जिस आप के गृह ऊपर हैं। (यस्य+वा+इह) जिस आप के गृह इस लोक में हैं अर्थात् जो आप सर्वव्यापक हैं (सः+नः+

अस्मै+ब्रह्मणे+अस्मै+क्षत्राय) सो आप मेरे इस परम ज्ञानी वर्ग को और शासक वर्ग को (महि+शर्म्म+यच्छ) बहुत कल्याण देवें। (स्वाहा) हे परमात्मन्! आपके लिये मेरा सर्व त्याग है॥

अब अनेक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं वेदों को विचारिये मालूम होगा कि जब ज्ञान और बल दोनों मिलकर कार्य करते हैं तबही परम कल्याण होता है। अतएव मनुजी बहुत जोर देकर कहते हैं कि—"दशावरा वा परिषद् यं धर्म्मं परिकल्पयेत्। त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्म्मं न विचालयेत्"। न्यून से न्यून दश विद्वानों की अथवा बहुत न्यून हो तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उसका उल्लंघन कोई भी न करे॥

ब्रह्म क्षत्री ही मित्र और वरुण हैं।

जिस ब्रह्म और क्षत्र का विवरण ऊपर दिखलाया है उनको ही वेदों में मित्र और वरुण कहते हैं। ब्रह्म मित्र है और क्षत्र वरुण है। इसमें यद्यपि अनेक प्रमाण मिलते हैं तथापि मैं केवल शतपथ का एक प्रबल प्रमाण यहां लिखता हूं यजुर्वेद ७। ९ की व्याख्या करते हुए शतपथ कहता है—

क्रतूदक्षौ ह वा अस्य मित्रावरुणौ। एतन्न्वध्यात्मं स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव

क्रतुरथ यदस्मै तत्समृध्यते स दक्षो मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्म कर्त्ता क्षत्रियः ॥ १ ॥ ते हैते अग्रे नानेवासतुः । ब्रह्म च क्षत्रं च । ततः शशाकैव ब्रह्म मित्र ऋते क्षत्राद्वरुणात्स्थातुम् ॥ २ ॥ न क्षत्रं वरुणः । ऋते ब्रह्मणो मित्राद्यद्ध किं च वरुणः कर्म चक्रेऽप्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण न हैवास्मै तत्समानृधे ॥ ३ ॥ स क्षत्रं वरुणः । ब्रह्म मित्रमुपमन्त्रयां चक्र उपमावर्तस्व संसृजावहै पुरस्त्वा करवै त्वत्प्रसूतः कर्म करवा इति तथेति तौ समसृजेतां तत एष मैत्रावरुणो ग्रहोऽभवत् ॥४॥ सो एव पुरोधा । तस्मान्न ब्राह्मणः सर्वस्येव क्षत्रियस्य पुरोधां कामयते सं ह्येतौ सृजेते सुकृतं च दुष्कृतं च नो एव क्षत्रियः सर्वमिव ब्राह्मणं पुरोदधीत सं ह्येवैतौ सृजेते सुकृतं च दुष्कृतं च स यत्ततो वरुणः कर्म चक्रे प्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण सं हैवास्मै तदानृधे ॥ शतपथ । ४ । १ ॥

क्रतु और दक्ष ही इसके मित्र और वरुण हैं । यह अध्यात्म विषय है । सो यह यजमान मनसे जो यह कामना करता है कि यह मुझे हो और यह कर्म मैं करूं इसी का नाम क्रतु है और जो इस कर्म से उसको समृद्धि प्राप्त होती है वही दक्ष है । मित्र ही क्रतु है और वरुण ही दक्ष है । ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी न्यायीवर्ग ही मित्र है और क्षत्र अर्थात् न्यायीशासकवर्ग ही वरुण है । मन्ता ही ब्रह्म है और कर्त्ता ही क्षत्रिय है ॥ १ ॥ पहले ब्रह्म और क्षत्र ये दोनों पृथक् २ रहते थे ब्रह्म जो मित्र है वह तो क्षत्र

वरुण के विना पृथक् रह सका किन्तु क्षत्र जो वरुण है वह ब्रह्म मित्रके बिना न रह सका ॥२॥ क्योंकि ब्रह्म मित्र की आज्ञा बिना क्षत्र वरुण जो जो कर्म्म किया करता था वह २ उसके लिये वृद्धि प्रद नहीं होता था ॥३॥ सो इस क्षत्र वरुण ने ब्रह्म मित्र को बुलाया और कहा कि मेरे समीप आप रहें (संसृजावहै) हम दोनों मिल जांय। मिलकर सर्व व्यवहार करें। मैं आपको आगे करूंगा और आपकी आज्ञानुसार मैं कर्म्म करूंगा। ब्राह्मण इस को स्वीकार कर दोनों मिल गए ॥ ४ ॥ तबसे ही मैत्रा वरुण नाम का एक ग्रह अर्थात् एक पात्र होता है ॥४॥ इस प्रकार पौरोहित्य चला। इस कारण सब ब्राह्मण, सब क्षत्रिय की पौरोहित्य-वृत्ति की कामना नहीं करता क्योंकि ये दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत कर्म करते हैं अर्थात् दोनों ही पाप पुण्य के भागी होते हैं। वैसाही सब क्षत्रिय सब ब्राह्मण को पुरोहित नहीं बनाता क्योंकि दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत करते हैं। तबसे क्षत्रिय वरुण जो २ कर्म्म ब्राह्मण मित्र से आज्ञा पाकर किया करता था वह २ कर्म उसको वृद्धिप्रद हुआ। इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि ब्रह्म को मित्र और क्षत्र को वरुण कहते हैं और इन दोनों को मिलकर ही व्यवस्था करनी चाहिये। इसमें यदि शासकवर्ग, ज्ञानीवर्ग की अधीनता को स्वीकार नहीं करे तो उसका निर्वाह कदापि न हो। अब आप वसिष्ठ और अगस्त्य दोनों मैत्रावरुण क्यों

कहलाते हैं यह समझ सकते हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर जिस सर्व हितकारी नियम को बनाते हैं उसी का नाम वसिष्ठ है और ब्राह्मण क्षत्रिय सभा की आज्ञा पाकर इस व्यवस्थित नियम को जो ग्राम २ में जा प्रजाओं में चलाया करता है उसका नाम अगस्त्य है। राज्यसम्बन्धी निखिल संस्थाओं का एक नाम उर्वशी है। अब मैं क्रमशः उत्पत्ति आदि बतलाता हुआ इस विषय को विस्पष्ट करूंगा ॥

वसिष्ठ की उत्पत्ति।

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा। तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार। ऋ० ७।३३।१०॥

(वसिष्ठ) हे वसिष्ठ=हे सत्यधर्म! (यद्+मित्रावरुणा) जब २ मित्र और वरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्र दोनों मिलके (विद्युतः+ज्योतिः+परि+संजिहानम्) देदीप्यमान ज्योति को सर्वथा परित्याग करते हुए (त्वा+अपश्यताम्) आपको देखते हैं (तत्+ते+एकम्+जन्म) तब २ आपका प्रसिद्ध जन्म हुआ है। (उत) और (यद्) जब (अगस्त्य) ब्रह्म क्षत्र सभा से नियुक्त मान्य प्रचारक (त्वा+विशः+आजभार) आपको प्रजाओं के निकट चारों ओर लेजाते हैं तब २ आपका जन्म होता है अर्थात् आपकी प्रसिद्धि

हुआ करती है। परि संजिहानम्=परित्यजन्तम्। सायण.
विश शब्द प्रजावाचक है यह प्रसिद्ध ही है अतएव विशांपति राजा कहाता है। यह ऋचा बहुत विस्पष्ट कर देती है कि सत्य नियम का नाम वसिष्ठ है। क्योंकि जब २ धर्म्म की हानि होने लगती है तब २ ब्राह्मण क्षत्रिय सभा पुनः उसको अच्छे प्रकार देख भालकर उसको ठीक सुधार देश में प्रचार करवाती है। अतः ऋचा कहती है कि जब २ वसिष्ठ विद्युत्स्वरूप को त्यागने लगता है तब २ मित्र और वरुण उसे देखते हैं और पुनः वसिष्ठ का जन्म होता है। ठीक है। जब २ धर्म्म अपने प्रकाशमय रूप को छोड़ देता है तब २ प्रजाओं में अति कोलाहल मचने लगती है। तब पुनः ब्रह्म क्षत्र एकत्रित हो धर्म्म व्यवस्था बांधते हैं। पुनः उसका प्रचार होता है। ऋचा में विस्पष्ट रूप से कहा गया है कि वसिष्ठ को अगस्त्य प्रजाओं के समीप चारों तरफ भेजाता है। इसका तात्पर्य्य केवल सुप्रचार से है। पुनः—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ऋ० ७।३३।११॥

(उतासि+वसिष्ठ+मैत्रावरुणः+असि) और भी हे वसिष्ठ ! हे सत्यधर्म्म ! आप इस प्रकार मैत्रावरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्रों के विचार से उत्पन्न हुए हैं केवल इतना

ही नहीं किन्तु (ब्रह्मन्) हे महान् पूज्य हद (उर्वश्याः+मनसः+अधि+जातः) उर्वशी के मन से अधिकतया आप उत्पन्न होते हैं (स्कन्नम्+द्रप्सम्+त्वा) इस प्रकार उत्पन्न पुभग आपको(दैव्येन+ब्रह्मणा)दैव्य=प्रजाहितकारी अर्थात् प्रजाओं के परमसुखकारी वेद की आज्ञानुसार वा सर्व हितकारी परमज्ञानी सभापति की आज्ञानुसार (विश्वे+देवाः) निखिल प्रजाएँ (पुष्करे+अददन्त) हृदयरूप कमल के ऊपर वा हृदयस्थ आकाश में अथवा ग्राम रक्षक पुरुष में जिसको ग्रामणी कहते हैं धारण कर लेती हैं। अददन्त=अधारमन्त। देव=ऐसे २ स्थल में देव शब्द सकल प्रजावाचक हैं। पुष्कर=पुर्+कर। पुर्=ग्राम। कर=कर्त्ता ग्राम का नायक। कमल आकाश आदि। उर्वशी=पाठशाला धर्म्मशाला, न्यायालय आदि संस्थाएँ। जब २ व्यवस्थित संस्थाएँ बिगड़ने लगती हैं तब २ उसे देखकर मित्र और वरुण बड़े घबराने लगते हैं अर्थात् उस २ संस्थाओं को स्थिर रखने के लिये अपना पूरा सामर्थ्य लगाते हैं तब पुनः वसिष्ठ=धर्म्मनियम का जन्म होने लगता है। जब इस प्रकार से धर्म्मनियम उत्पन्न होता है तब सब मनुष्य मिलकर दैव्य ब्रह्म अर्थात् परमज्ञानी न्यायशील सभापति के साथ उस नियम को पुष्कर अर्थात् प्रत्येक ग्राम के नायक के ऊपर स्थापित करते हैं। पुष्कर=ग्रामनायक तब कदापि कोई अन्याय नहीं कर सका। यह ऋचा कैसी सुगम राज्यव्यवस्था बतला रही है। जब २ संस्थाएँ

बिगड़ने लगें तब २ उचित है कि ब्रह्म और क्षत्र मिल कर उसको संभालें और उस समय के लिये विशेष नियम बनावें। तब सब प्रजाओं की ओर से स्वीकृत होने पर वे प्रजाएँ स्वयं दैव्य ब्रह्म की आज्ञा से ग्राम २ के नायक को वे २ नियम सौंपें तदनुसार सब कोई चलें। इससे महान् सुख उत्पन्न होता है। ऐसा नियम स्थापित होने से कैसा सुख आनन्द वैभव फैलता है इस पर स्वयं वेद भगवान् कहते हैं—

स प्रकेत उभयस्य विद्वान् सहस्रदान उत वा सदानः। यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः॥ ऋ० ७। ३३। १२॥

वेदों में एक यह भी रीति है कि गुण में भी चेतनत्व का आरोप कर गुणिवत् वर्णन करने लगते हैं। राज्य नियम से लोक ज्ञानी विद्वान् महाधनाढ्य होते हैं अतएव यह नियम ही ज्ञानी, विद्वान्, महाधनाढ्य आदि कहा जाता है। (सः+प्रकेतः) वह परम ज्ञानी (उभयस्य+विद्वान्) और ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों को जानता हुआ वसिष्ठ (सहस्रदानः) बहुत दानी होता है (उत वा+सदानः) अथवा सर्वदा दान देता ही रहता है। कब? सो आगे कहते हैं—(यमेन) ब्रह्म क्षत्रों के प्रबल दण्डधारा से (ततम्+परिधिम्) विस्तृत व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयिष्यन्) बुनता हुआ (वसिष्ठः) वह सत्य

उत्पन्न (अप्सरसः + परि जज्ञे) सर्व संस्थाओं को लक्ष्य करके उत्पन्न होता है। अब आगे सार्वजनीन परम हित-कारी सिद्धान्त कहते हैं—

सत्रे ह जाता विषिता नमोभिः कुंभेरेतः सिषिचतुः समानम्। ततोह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३॥ उक्थ-भृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्रवदात्यग्रे उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥ ऋ० ।७।३३।१४॥

सत्र=सतांत्रः सत्रः। सज्जनों की जो रक्षा करे उस यज्ञ का नाम सत्र है। अथवा जो सत्य यज्ञ है वही सत्र है। सम्पूर्ण प्रजाओं के हितसाधक उपायों के बनाने के लिये जो अनुष्ठान है वही महासत्र है। कुम्भ=वासतीवर कलश अर्थात् सुन्दर उत्तम २ जो बसने के ग्राम नगर हैं वेही यहां कुम्भ हैं। जैसे कुम्भ में जल स्थिर रहता है तद्वत् ग्राम में बसने पर मनुष्य स्थिर होजाता है। अतः सब भाष्यकार इस कुम्भ का नाम वासतीवर रक्खा है। मान=माननीय। जिसका सम्मान सब कोई करे। मापने-हारा, परीक्षक इत्यादि। अथ मन्त्रार्थ—(सत्रे+ह+जातौ) यह प्रसिद्ध बात है कि जब बहुत सम्मति से सत्र में दीक्षित होते हैं और (नमोभिः+इषिता) सत्कार से जब अभिलाषित

होते हैं अर्थात् जब ब्रह्मसमूह और क्षत्रसमूह को बड़े सत्कार के साथ सर्व हितसाधक धर्म्मप्रणेतृ सभारूप महा-यज्ञ में प्रजाएँ बुलाकर धर्म्म नियम बनवाती हैं तब (समानम्+रेतः+कुम्भे+सिषिचतुः) वे मित्र और वरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्र दोनों मिलकर समानरूप से रेत=रमणीय धर्म्मरूप प्रवाह को प्रत्येक ग्रामरूप कलश में सींचते हैं(ततः+ह+मानः+उदियाय) तब सबका मापनेहारा सर्व को एक दृष्टि से देखनेहारा एक मानने योग्य नियम उत्पन्न होता है। (ततः+मध्यात्+वसिष्ठम्+ऋषिम्+जातम् आहुः) और उसी के मध्य से वसिष्ठ ऋषि को उत्पन्न कहते हैं ॥१३॥ इसका आशय विस्पष्ट है अब आगे उपदेश देते हैं कि प्रजामात्र को उचित है कि इस वसिष्ठ का सत्कार करे (प्रतृदः) हे अत्यन्त हिंसक पुरुषो! हे प्रजाओं में उपद्रवकारी नरो! (वः+वसिष्ठः+आगच्छति) तुम्हारे निकट राष्ट्रनियम आता है। (सुमनस्यमानाः) प्रसन्न मन होके तुम (एनम्) इस धर्म नियम को (उप+आध्वम्) अपने में देववत् आदर करो। वह वसिष्ठ कैसा है (उक्थ-भृतम्+सामभृतम्) उक्थभृत्=ऋग्वेदीय होता। सामभृत्=उद्गाता। (बिभर्ति) इन दोनों को धारण किये हुए है और (ग्रावाणम्+बिभ्रत्) उग्र प्रस्तर अर्थात् दण्ड को लिए हुए है। यजुर्वेदी अध्वर्यु को भी साथ में रक्खे हुए है (अग्रे+प्रवदाति) और वह आगे २ निज प्रभाव को कह रहा है ॥१४॥ जैसा धर्म शास्त्रों में लिखा है कि "त्र्यवरा

चापि हृत्तस्था" न्यून से न्यून ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी तीन मिलकर जिस धर्म को नियत करें उसको कोई भी विचलित न करने पावे। इसी ऋचा से यह नियम बना है। प्रतृद=उतृदिर् हिंसानादरयोः। हिंसा और अनादर अर्थ में तृद् धातु आता है अर्थात् जो राष्ट्रीय नियमों को हिंसित और अनादर करते है वेही यहां प्रतृद हैं। अब और भी अर्थ विस्पष्ट होजाता है। धर्म्म नियम किसके लिये बनाए जाते हैं निःसन्देह उन दुष्ट पुरुषों को नियम में लाने के लिये ही धर्म्म की स्थापना होती है अतः वेद भगवान् यहां कहते हैं कि हे दुष्ट हिंसको! और निरादरकारी जीवो! देखो तुम्हारे निकट धर्म्म आरहे हैं। इनका प्रतिपालन करो। यह नियम तीनों वेदों की आज्ञानुसार स्थापित हुआ है यदि इसका निरादर तुमने किया तो तुम्हारे ऊपर महादण्ड पतित होगा। इस से यह भी विस्पष्ट होता है कि वसिष्ठ नाम धर्म्म नियम का ही है जो ब्रह्मक्षत्र सभा से सर्वदा सिक्त होता रहता है॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति। यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठाः। ७। ३३। ९॥

वसिष्ठाः=यहां वसिष्ठ शब्द बहुवचन है। इस मंडल में बहुवचनान्त वसिष्ठ शब्द कईएक स्थान में प्रयुक्त हुआ है (ते वसिष्ठाः) वे २ धर्म्म नियम (इत्) ही (निण्यम्)

अज्ञानों से तिरोहित=ढँके हुए (सहस्रवल्शस्) सहस्र शाखायुक्त उस २ स्थान में (हृदयस्य+प्रकेतैः) हृदय के ज्ञानविज्ञानरूप महाप्रकाश के साथ (संचरन्ति) विचरण कर रहे हैं (यमेन+ततम्+परिधिम्) दण्ड की सहायता से व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयन्तः) बुनते हुए (अप्सरसः +उपसेदुः) उस २ संस्था के निकट पहुंचते हैं ॥

अब मैंने यहां कई ऋचाएँ उद्धृत की हैं विद्वद्गण विचार करें कि वसिष्ठ शब्द के सत्यार्थ क्या हैं। इन्हीं ऋचाओं को लेकर सर्वानुक्रमणी बृहद्देवता और निरुक्त आदिकों में जो २ आख्यायिकाएँ प्रचलित हुई हैं उनसे भी यही अर्थ निःसृत होते हैं। तद्यथा बृहद्देवता—

उतासि मैत्रावरुणः। ऋ०।७।३३।११॥

ऋचा की सायण व्याख्या में बृहद्देवता की आख्यायिका उद्धृत है वह यह है—

तयो रादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरस मुर्वशीम्। रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे। तेनैव तु मुहूर्त्तेन वीर्य्यवन्तौ तपस्विनौ। अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संवभूवतुः। वहुधा पतितं रेतः कलशेच जले स्थले। स्थले वसिष्ठ स्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः। कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः। उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः। मानेन संमितोयस्मात् तस्मात् मान इहोच्यते। इत्यादि ॥

अदिति के पुत्र मित्र और वरुण हुए। वे दोनों किसी यज्ञ में गए। वहां उर्वशी को देख साथ ही दोनों का रेत गिर गया। वह रेत कुछ घड़े में और कुछ स्थल में जा गिरा। स्थल में जो गिरा उससे वसिष्ठ और कलश में जो गिरा उससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। अतएव इन दोनों को मैत्रावरुण कहते हैं क्योंकि ये दोनों मित्र और वरुण के पुत्र हैं अगस्त्य जिस कारण घट से उत्पन्न हुए अतः इनका घटयोनि, कलशज आदि भी नाम हैं॥

भागवत।

भागवतादि पुराणों ने वसिष्ठ को शुद्ध दिखलाने के लिये एक विचित्र कथा गढ़ी है। इक्ष्वाकुपुत्र निमि राजा ने वसिष्ठ को बुलाकर यज्ञ करवाने को कहा परन्तु वसिष्ठ को पहले इन्द्र ने बुलाया था अतः "मैं इन्द्र को प्रथम यज्ञ करवा आप का यज्ञ आरम्भ करूंगा" ऐसा कह वसिष्ठजी इन्द्र के यज्ञ में चले गए। इधर निमि ने अन्य ऋत्विकों को बुला यज्ञ करना आरम्भ करादिया। लौटने पर अपने यजमान का ऐसा अधैर्य्य देख वसिष्ठ ने निमि को शाप दिया कि तुम्ह से शरीर गिर जाय। निमि ने भी गुरु को अधर्मी देख शाप दिया कि तेरी भी यही गति हो "अशपत्पततादेहो निमेः पण्डितमानिनः"। निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्म्मवर्त्तिने। तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्म्म मजानतः। भाग० ९। १३। ५॥ इस

प्रकार शापग्रस्त हो वसिष्ठजी मित्र और वरुण के वीर्य्य से उर्वशी में पुनः उत्पन्न हुए "मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः" । भागवत ९ । १३ । ६ ॥ वसिष्ठ के पुत्र शक्ति । शक्ति के पराशर । पराशर के व्यास । व्यास के पुत्र शुक । अतः शुकाचार्य परीक्षित् से कहते हैं कि हे राजन् ! मित्र और वरुण के रेत से उर्वशी में मेरे पितामह उत्पन्न हुए ॥

समीक्षा—यद्यपि वेद में जल स्थल और वासतीवर आदि का वर्णन नहीं तथापि बृहद्देवता ऐसा कहता है । वेदों के एक ही स्थान कुम्भ में दोनों ऋषियों की उत्पत्ति कही गई है। इसका भी भाव यह है कि क्या जल और क्या स्थल दोनों स्थानों में धर्म्म नियम तुल्य रूप से प्रचलित होते हैं । अब पुराणों की बात पर दृष्टि दीजिये । पुराण सर्वदा एक न एक भूल करते ही रहते हैं । पुराण ब्रह्मा से सारी उत्पत्ति मानते हैं । परन्तु बहुतसी बातें प्राचीन चली आती हैं जहां ब्रह्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं किन्तु पौराणिक समय में वे बातें इतनी प्रचलित थीं कि उनको दूर नहीं कर सकते थे । उर्वशी में मित्रावरुण द्वारा वसिष्ठ की उत्पत्ति और वही सूर्यवंशीय राजाओं का गुरु है यह बात अति प्रसिद्ध थी इस कथा को पुराण लोप नहीं कर सकते थे । अतः इनको एक नवीन कथा गढ़नी पड़ी । पुराणों की दृष्टि में असम्भव कोई बात नहीं अतः ब्रह्मा से लेकर केवल छः पीढ़ियों में हजारों चौयुगी काल को

समाप्त कर देते हैं। कहां सृष्टि की आदि में ब्रह्मा का पुत्र वसिष्ठ! और कहां केवल छठी पीढ़ी में शुकाचार्य के कलि युगस्थ परीक्षित् को कथा सुनाना। कितना लम्बा चौड़ा यह गप्प है॥

यास्ककी सम्मति—उर्वशी शब्द का व्याख्यान करते हुए यास्क भी "तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द" उसके दर्शन से मित्र और वरुण का रेत स्खलित होगया ऐसा लिखते हैं। आश्चर्य की बात है कि वे भाष्यकार निरुक्तकार आदि भी ऐसी २ जटिल कथा का आशय न बतला गए॥

वसिष्ठ पुरोहित—यही उर्वशीपुत्र मैत्रावरुण वसिष्ठ राजवंशों के पुरोहित थे। यही आशय सर्वकथाओं से सिद्ध होता है। वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में यों लिखा है "कस्य चित्त्वथ कालस्य मैत्रावरुणसंभवः"। वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञ इक्ष्वाकुदैवतम्॥ ७॥ तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्र मनिन्दितम्। वव्रे पुरोधसं सौम्यं वंशस्यास्य हिताय नः॥ ८॥ रा०। उ०। सर्ग ५७॥ सूर्यवंशी के आदि राजा इक्ष्वाकु हैं। इन्होंने इसी उर्वशी सम्भव मैत्रावरुण वसिष्ठ को अपने पुरोहित बनाया। शुकाचार्य बड़े आदर के साथ इनको ही अपना प्रपितामह कहते हैं अब विचार करने की बात है कि इस सबका यथार्थ तात्पर्य क्या है? मैं अभी जो पूर्व में लिख आया

हूं यही इसका वास्तविक तात्पर्य है। वसिष्ठ कोई आदमी नहीं हुआ न उर्वशी आदि ही कोई देहधारी जीव है। एवं मित्र और वरुण सामान्य वाचक शब्द हैं किसी खास व्यक्ति वाचक नहीं अब मैं नामार्थ से भी उस विषय को दृढ़ करता हूं॥

वसिष्ठादि नामों के अर्थ—'वसु' शब्द से यह वसिष्ठ बना है। जो सब के हृदय में बसे वह वसु, जो अतिशय वास करने हारा है वह वसिष्ठ। मैं लिख आया हूं कि यहां धर्म्म नियम का नाम वसिष्ठ है। निःसन्देह वेही धर्म्म नियम संसार में प्रचलित होते हैं जो सबके रुचिकर हों जिन्हें सब कोई अपने हृदय में वास दे सकें। अतः धर्म्म नियम का नाम यहां वसिष्ठ रक्खा है। वसु शब्द, धन सम्पत्ति आदि अर्थ में भी आया है अतः जो नियम अतिशय सम्पत्तियों को उत्पन्न करने हारा हो, प्रजाओं में जिनसे चारों तरफ अभ्युदय हो उसी नियम का नाम वसिष्ठ है। अगस्त्य=अग+पर्वत, यहां अचल रूप से स्थिर जो प्रजाओं में नाना अज्ञान, उपद्रव विघ्न हैं वेही अग रूप हैं उन्हें जो विध्वंस करे वह अगस्त्य "अगान् विघ्नान् अस्यति विध्वंसयति यः सोऽगस्त्यः" वेद में आया है कि अगस्त्यो यत्त्वा विश आजभार। ७। ३३। १०॥ वसिष्ठ को अगस्त्य प्रजाओं के निकट लेजाते हैं अर्थात् ब्रह्मक्षत्रसभा से निश्चित धर्म्म नियम को साथ ले अगस्त्य (प्रचारकगण) प्रजाओं के समस्त विघ्नों को विध्वस्त

कर देते हैं अतः प्रचार वा प्रचारकमण्डल का नाम यहां अगस्त्य कहा है। उर्वशी जिस को बहुत आदमी चाहें वह उर्वशी "याम् उरवो बहव उशन्ति कामयन्ते सा उर्वशी"। पाठशाला, न्यायशाला आदि संस्थाओं को जहां २ बहुत आदमी मिलकर स्थापित करना चाहते हैं वहां २ ब्रह्म-क्षत्रसभा की ओर से वह २ संस्था स्थापित होती है। अतः यहां संस्था का नाम उर्वशी है॥

आवश्यक नियम—वसिष्ठ अगस्त्य और उर्वशी आदि शब्द वेदों में अनेकार्थ प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु अपने २ प्रकरण में वही एक अर्थ सदा स्थिर रहेगा अर्थात् जहां मैत्रावरुण वसिष्ठ कहा जायगा उस प्रकरण भर में यही अर्थ होगा और ऐसे ही अर्थको लेकर संगति भी लगती है॥

वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे हुए—अब आप इस बात को समझ सके हैं कि वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे बने। यह प्रत्यक्ष बात है कि नियम बनाने वाले का ही प्रथम शासक नियम होता है अर्थात् जो विद्वान् नियम बनाता है वही प्रथम पालन करता है यदि ऐसा न हो तो वह नियम कदापि चल नहीं सक्ता मित्र वरुण अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर नियम बनाते हैं अतः प्रथम इनकाही वह शासक होता है। जिस कारण ब्रह्मवर्ग में स्वभावतः नियम पालन करने की शक्ति है। वे उपद्रवी कदापि नहीं हो सके क्योंकि परम धर्म्मात्मा पुरुष का ही

नाम ब्रह्म है। क्षत्रवर्ग सदा उद्दण्ड उच्छृंखल आततायी अविवेकी हुआ करते हैं अतः इनके लिये धर्म्म नियमों की बड़ी आवश्यकता है जिनसे वे सुदृढ़ होकर अन्याय न कर सकें। आजकल भी पृथिवी पर देखते हैं कि क्षत्रवर्ग ही परम उद्दण्ड होरहे हैं, इनको ही वश में लाने के लिये बड़ी २ सभा कर प्रजाओं से मिल ब्रह्मवर्ग नियम स्थापित कर रहे हैं अतः वह वसिष्ठ नामी नियम विशेषकर क्षत्रियकुलों का ही पुरोहित हुआ। पुरोहित शब्द का यही प्राचीन अर्थ है कि जो सदा आगे में रहे जिससे सम्राट् भी डरे। जिसका अनिष्ट महा सम्राट् भी न कर सक्ता हो। जिसके पक्ष में सब प्रजाएँ हों, जो प्रजाओं के प्रतिनिधि होकर सदा उनकी हित की बात करे और राजा को कदापि उच्छृङ्खल न होने दे। जैसे आजकल रक्षित राज्यों को वश में रखने के लिये रेजिडेण्ट हुआ करता है।

मित्र और वरुण।

जैसे बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र शब्द साथ आते हैं तद्वत् मित्र और वरुण शब्द भी पचासों मन्त्रों में साथ साथ प्रयुक्त हुए हैं। कहीं असमस्त और कहीं समस्त। समस्त होने पर मित्रावरुण ऐसा रूप बन जाता है। मित्र और वरुण के दो एक उदाहरण मात्र से आप को ज्ञात होजायगा कि यह ब्रह्मक्षत्र का वर्णन है। यथा—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीं साधन्ता । ऋ० । १ । २ । ६ ॥

पूतदक्ष=पवित्र बल, जिस का बल परम पवित्र है । रिशादस=रिश+अदस् । रिश=हिंसक+पुरुष । अदस्=भक्षक । हिंसकों का भी भक्षक । धी=कर्म, ज्ञान । घृताची=घृतवत् शुद्ध घृतवत् पुष्टिकारक आदि । अथ मन्त्रार्थ—(पूतदक्षं+मित्रम्+रिशादसम्+वरुणञ्च+हुवे) पवित्र बलधारी मित्र और दुष्ट हिंसकों के विनाशक वरुण को बुलाता हूं जो दोनों (घृताचीं+धियं+साधन्ता) घृतवत् पवित्र ज्ञान को फैला रहे हैं । घृतवत् विचाररूप दूध से उत्पन्न ज्ञान घृताची है ॥

मित्र और वरुण के सम्बन्ध में राजा सम्राट् आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं यथा—

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा ।
ऋतावाना वृतमा घोषतो बृहत् ॥४॥ ऋता-
वाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता
क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥८॥ ऋ० । ८ । २५ ॥

(मित्रावरुणा+महान्ता) ये मित्र और वरुण महान् हैं (सम्राजा) सम्राट् हैं (देवौ+असुरा) देदीप्यमान और असुर=निखिल अज्ञान के निवारक हैं (ऋतावानौ) सत्य-

वान् हैं और (बृहत् + ऋतम् + आघोषतः) महान् सत्य की ही घोषणा करते हैं ॥४॥ (ऋतावानौ + सुक्रतू) स्वयं सत्यनियम में बद्ध और सदा शोभन कर्म्म में परायण मित्र और वरुण (साम्राज्याय + निषेदतुः) साम्राज्य सम्बन्धी विचार के लिये बैठते हैं। पुनः वे कैसे हैं। (धृतव्रता) सत्यादि व्रतधारी पुनः (क्षत्रिया) परमबलिष्ठ और (क्षत्रम् + आशतुः) जो परमबल का अधिष्ठाता है ॥८॥ पुनः केवल वरुण के विषय में वर्णन आता है ॥

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥१०॥ परिस्पशो निषेदिरे ॥ ऋ० १ । २५ । १३ ॥

(पस्त्यासु) पस्त्या=प्रजा। प्रजाओं के मध्य (साम्राज्याय) राज्य नियम स्थापित करने के लिये यह वरुण व्रतधारी हो बैठता है। इसके चारों तरफ दूतगण बैठते हैं ॥

यहां देखते हैं कि धर्म्म के नियमों को बनाने हारे व्यवस्थापकों को जिस २ योग्यता की आवश्यकता है उस २ का यहां निरूपण है। प्रथम सत्य की बड़ी आवश्यकता है अतः मित्र और वरुण के विशेषण में जितने ऋत वा सत्यवाचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं उतने अन्य इन्द्रादिकों के लिये नहीं। पुनः अपने व्रत में दृढ़ होना चाहिये अतः धृतव्रत शब्द के प्रयोग भी भूयोभूयः आता है।

पुनः व्यवस्थापकों को अध्यात्म बल भी अधिक चाहिये अतः क्षत्रिय शब्द आता है इस प्रकार ज्यों २ विचारते हैं त्यों २ यही प्रतीत होता है कि मित्र और वरुण नाम ब्रह्म-क्षत्र का है। इसी ब्रह्म-क्षत्र का पुत्र वसिष्ठ है। पुनः वेदों को देख मीमांसा कीजिये भ्रम में मत पड़िये। वसिष्ठ कोई व्यक्ति विशेष नहीं किन्तु सत्यार्थ का ही नाम वसिष्ठ है। सत्य नियम ही क्षत्रियों का भी शासक है॥

एक बात और यहां दिखाने के लिये परम आवश्यक है कि धर्म्म ही क्षत्र का भी क्षत्र है अर्थात् परम उद्दण्ड राजाओं को वश में करने हारा केवल धर्म्मनियम है। वह यह है—

स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्म्मं तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म्मस्तस्माद्धर्म्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान् बलीयांसमाशंसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्म्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्म्मं वदतीति धर्म्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति॥ बृ० उ० १।४।१४॥

आशय—बृहदारण्यकोपनिषद् में यह वर्णन आता है कि जब ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणवर्ग, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को बना चुके तौभी देश की वृद्धि नहीं हुई। तब अत्यन्त कल्याणस्वरूप जो धर्म्म है उसको सबसे बढ़िया बनाया। क्षत्र का भी शासक वही धर्म्म हुआ अतः धर्म्म से परे कोई पदार्थ नहीं। जैसे राज्य की सहायता से वैसे ही

धर्म्म की सहायता से एक महादुर्बल पुरुष भी परम बलिष्ठ पुरुष का साम्मुख्य करता है। वह धर्म्म सत्य ही है। अतः सत्य बोलनेहारे को देखकर लोक कहते हैं कि यह धर्म्म कह रहा है। इसी प्रकार धर्म्म के व्याख्याता को सत्य-वादी कहते हैं ॥

यहां पर यह वर्णन आता है कि क्षत्रियों के भी शासक धर्म्मनियम हैं। इन नियमों में बद्ध होकर यदि कोई क्षत्रिय अन्याय करे तो प्रजाएँ उस को तत्काल रोक देती हैं। अब आप समझ सकते हैं कि वसिष्ठ के अधीन समस्त राजवंश कैसे हुए। निःसन्देह ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्गों से निर्धारित जो धर्म्म व्यवस्था है उस का पालन यदि कोई न करे तो कब उसे कल्याण है अतः सर्व-राजाओं ने वसिष्ठ नामधारी धर्मनियम को ही अपना पुरोहित बनाया ॥

वसिष्ठ और चोरी।

ऋग्वेद के सम्पूर्ण सप्तम मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ हैं। बहुत थोड़े से मन्त्रों के द्रष्टा वसिष्ठपुत्र भी माने जाते हैं। इसी मण्डल में वसिष्ठ सम्बन्धी बहुतसी प्रचलित वार्त्ताओं का बीज पाया जाता है। "अमीवहा वास्तोष्पते" इत्यादि ५५वें सूक्त को प्रस्वापिनी उपनिषद् नाम से अनुक्रमणिका-कार लिखते हैं। बृहद्देवता इसके विषय में विलक्षण कथा गढ़ती है वह यह है—"एक समय वरुण के गृह पर वसिष्ठ

गए। इनको काटने के लिये भौंकता हुआ एक महाबलिष्ट कुत्ता पहुंचा। तब वसिष्ठ ने "यदर्जुन" इत्यादि दो मन्त्रों को पढ़कर उस को सुलाया और पश्चात् अन्यान्य मन्त्रों से वरुणसम्बन्धी सब मनुष्यों को भगा दिया" कोई आचार्य इस सूक्त पर यह आख्यायिका कहते हैं। "एक समय तीन रात्रि तक वसिष्ठ को भोजन न मिला तब चौथी रात्रि चोरी करने को वरुण के गृह पहुंचे। द्वार पर बहुतसे आदमी और कुत्ते सोए हुए थे। इनको सुलाने के लिये वसिष्ठजी ने इस ५५वें सूक्त को देखा और उसका जप किया" इत्यादि बातें सायण ने इस सूक्त के भाष्य के आरम्भ में ही दी हैं अतः प्रथम सूक्त के शब्दार्थ कर आशय बतलाऊंगा॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्या-
विशन्। सखा सुशेव एधि नः॥ १॥

ऋ० ७। ५५॥

अमीवहा=अमीव+हा। अमीव=रोग। हा=नाशक। वास्तोष्पते=वास्तोः+पते। वास्तु=गृह। संसाररूप गृहपति परमात्मा। यहां कोई उपासक कहता है कि (वास्तोः+पते) हे गृहाधिदेव! समस्त गृहों में निवास करने हारे परमात्मन्! (अमीवहा) आप मानसिक आत्मिक तथा दैहिक सर्व रोग के निवारक हैं (विश्वा+रूपाणि+आविशन्) आप सर्व रूपों में प्रविष्ट हैं। हे भगवान्! (सखा) मित्रवत् परमप्रिय

और (सुशेवः) परम सुखकारक (नः+एधि) हमारे लिये हूजिये। इतनी ईश्वर से प्रार्थना कर अब आगे कहते हैं कि—

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे। वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्केषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥ स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर। स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥ त्वं सूकरस्य दर्दृहि तवदर्दर्तु सूकरः। स्तोतृनिन्द्रस्य० ॥ ४ ॥

ऋ० ७। ५५ ॥

अर्जुन=श्वेत, सफेद। सारमेय=सरमा का पुत्र। देवशुनी का नाम सरमा है, दत्=दांत ऋष्टि=आयुध, अस्त्र। राय=जाओ। रायसि=गच्छसि=जाते हो। अथ मन्त्रार्थ—(अर्जुन+सारमेय) हे श्वेत सारमेय! (पिशङ्ग) हे कहीं २ पिंगलवर्ण! कुत्ते (यद्+दतः+यच्छसे) जब तुम अपने दांतों को दिखलाते हो तब वे दांत (स्रक्केषु+उप) ओष्ठ के कोने में (ऋष्टयः+इव+वि+भ्राजन्ते) आयुध के समान चमकने लगते हैं और (बप्सतः) हम को खानेके लिये दौड़ते हो ॥ २ ॥ (सारमेय+पुनःसर) हे सारमेय! हे पुनःसर! पुनः २ मेरी ओर आने हारे कुत्ते! (स्तेनं+तस्करम्+राय) तू चोर की ओर जा। (इन्द्रस्य+स्तोतॄन्+अस्मान्+किम्+रायसि) परमात्मा के स्तुतिपाठक हमारी

ओर तू क्यों आता है और (दुच्छुनायसे) क्यों हम को बाधा देता है (नि+सु+स्वप) हे कुत्ते ! तू अत्यन्त सोजा ॥३॥ (त्वम्+सूकरस्य+दर्द्दहि) तू सूकर को काटखा (सूकरः +तव+दर्दर्तु) और सूकर तुझ को काट खाय (इन्द्रस्य+ स्तोतॄन्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥४॥

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः । ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वय मभितोजनः ॥५॥ य आस्ते यश्चरति यश्च पश्यति नोजनः । तेषां संहन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥ ऋ० ७ । ५५ ॥

(माता+सस्तु+पिता+सस्तु) हे सारमेय ! तेरे माता पिता सोजांय । जो यह बड़ा कुत्ता है वह भी सोजाय । (विश्पतिः) जो गृहपति है वह भी सोजाय इस प्रकार सबही ज्ञाति और चारों तरफ के आदमी सोजांय । जो बैठा है जो चल रहा है जो हम को देखता है उन सब की आंखों को हम फोड़ते हैं । वे सब राजगृह के समान अचल होवें ॥६॥

प्रोष्ठेशया: वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः । स्त्रियोयाः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ।८। ऋ० ७ । ५५ ॥

(याः+ नारीः+प्रोष्ठेशयाः) जो स्त्रियां आंगन में सोगई हैं (वह्येशयाः) जो किसी बिछौने पर सोई हुई हैं (तल्प-

शीवरीः) जो पलंग पर सोई हुई हैं (याः + स्त्रियः + पुण्य-गन्धाः) जो स्त्रियां पुण्य गन्धवाली हैं (ताः + सर्वाः + स्वापयामसि) उन सब को मैं सुलाता हूं ॥ ८ ॥

आशय—सरतीति सरमा। भोगविलास की ओर दौड़नेहारी जो यह महातृष्णा है यही शुनी याने कुत्ती है और इसी कुत्ती के ये आंख कान आदि इन्द्रिय गुलाम हैं अतः इस का नाम सारमेय है। अर्जुन=श्वेत। इन इन्द्रियों में कोई श्वेत=सात्त्विक और कोई पिशंग अर्थात् राजस तामस नाना वर्ण के हैं। ये दोनों प्रकार के इन्द्रिय परम दुःखदायी हैं। और यह भी प्रत्यक्ष है कि इन्द्रियों का व्यवहार कुत्ते के समान है। अतः कोई उपासक प्रार्थना करता है कि हे कुत्ते के समान इन्द्रियगण ! मुझे तुम क्यों दुःख देते हो। तुम सोजाओ अर्थात् शिथिल होजाओ। तुम जानते नहीं कि हम परमात्मा के उपासक हैं फिर तुम कैसे हम को काट सकते हो तुम सो ही जाओ। मैं इन सब कुत्तों की आंखें फोड़ डालता हूं इत्यादि। इस से जो कोई सचमुच कुत्ते को सुलाने का भाव समझते हैं वे बड़े अज्ञानी हैं। क्या मन्त्र पढ़ने से कुत्ते सो जायंगे ? वेद के गूढ़ २ आशय को न समझ कैसी अज्ञानता लोगों ने फैलाई है। यहां सारमेय आदि शब्द इन्द्रिय-वाचक हैं। और "मैं स्त्रियों को सुलाता हूं" इस का आशय यह है कि जब इन्द्रियगण अति प्रबल होते हैं तब सबसे पहले स्त्रियों की ओर दौड़ते हैं। विषयी पुरुषों के लिये यह

एक महाविषवल्ली है। अतः उपासक कहता है कि "मैं सब स्त्रियों को भी बुलाता हूं" अर्थात् परमात्मा से प्रार्थना है कि स्त्रियों की ओर भी मेरा मन न जाय इत्यादि इस का सुन्दर भाव है। इससे चोरी की कथा गढ़नेहारे कदापि वेद नहीं समझ सकते। इसमें वसिष्ठ की कहीं भी चर्चा नहीं। यदि मान लिया जाय कि इस मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ होने से वसिष्ठ ही ऐसी प्रार्थना करते हैं तो भी कोई क्षति नहीं। मैं वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में विस्तार से दिखला चुका हूं कि वैदिक पदार्थानुसार ऋषियों के नाम दिये जाते हैं जिस कारण वसिष्ठ अर्थात् सत्यधर्म्म की व्यवस्था का विषय इस मण्डल में है अतः इसके द्रष्टा का नाम भी वसिष्ठ हुआ। सब को ऐसी प्रार्थना नित्य ही करनी चाहिये इत्यलम्॥

वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं के बीज—सर्वानुक्रमणी, बृहद्देवता, यास्ककृतनिरुक्त और ताण्ड्य महाब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी बहुतसी कथाओं के बीज पाये जाते हैं। एक स्थल में यास्क कहते हैं कि "वसिष्ठोवर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव। तं मण्डूका अन्वमोदन्त। स मण्डूकाननुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव"। निरुक्त ९। ६। वर्षा की इच्छा से वसिष्ठ मेघ की स्तुति करने लगे, मण्डूकों ने अर्थात् मेंडकों ने उनके वचन का अनुमोदन किया, अनुमोदन करते हुए मेंडकों को देख वसिष्ठजी उन की ही

स्तुति करने लग गए। और इनकी स्तुति में १०३वें सूक्त को देखा। हां, इस सूक्त में मण्डूकों का वर्णन तो अवश्य ही है किन्तु वसिष्ठजी मण्डूकों की स्तुति करने लग गए यह कथा इसमें कहीं भी नहीं है ॥

दूसरी जगह यास्क कहते हैं कि "पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद् विपाडुच्यते" मरने की इच्छा करते हुए वसिष्ठ के पाश इस नदी में टूटे थे अतः इसको विपाट् कहते हैं। ऋग्वेद ७। ३२ सूक्त की अनुक्रमणिका में लिखा है कि "सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाणः शक्तिरन्त्यं प्रगाथमालेभे। सोऽर्धर्च उक्तेऽदह्यत। तं पुत्रोक्ते वसिष्ठः समापयतेति शाट्यायनकम्। वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम्। शाट्यायन ब्राह्मण के अनुसार जब सुदा राजा के पुत्रों ने वसिष्ठ पुत्र शक्ति को अग्नि में फेंक दिया तब इसने इस सूक्त के अन्तिम प्रगाथ को पाया। किन्तु वह आधी ऋचा की समाप्ति पर स्वयं दग्ध होगया पश्चात् पुत्रोक्त को वसिष्ठ ने समाप्त किया। और ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार इस अन्तिम ऋचा के भी ऋषि वसिष्ठ ही हैं। जब वसिष्ठ के पुत्र हत हुए तब इन्होंने इसको देखा। ऋ० ७। १०४वें सूक्त को लक्ष्य कर बृहद्देवता में लिखा है कि "ऋषिर्ददर्श रक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः। हते पुत्र शते क्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा"। जब वसिष्ठ के १०० सौ पुत्र मारे गये तब ऋषि ने इस १०४वें रक्षोघ्न सूक्त को

देखा। इस प्रकार की बहुतसी बातें प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं। इस में सन्देह नहीं कि वेदों के यथार्थ तात्पर्य नष्ट होने पर विविध आख्यायिकाएँ रची गईं। बहुतसी कथाएँ रूपक में लिखी गई थीं उनका भी आशय समय पाकर अज्ञात होगया। मैं अब महाभारतादि में जो वसिष्ठ सम्बन्धी वार्त्ता पाई जाती है उसको दिखलाऊँगा वह भी गूढ़ आशय प्रगट करती है अतः ध्यान से पढ़िये और इसके तात्पर्य्य को अच्छे प्रकार विचारिये ॥

विश्वामित्र का वंश—वेदों में विश्वामित्र शब्द के प्रयोग बहुत आए हैं *। जैसे लोक में विश्वामित्र कौशिक कहाते हैं वैसे वेद में "कुशिकस्य सूनुः" ऐसा प्रयोग है

---

* महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः। विश्वामित्रो यदवहद् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥ ९ ॥ विश्वामित्रा अरासत महेन्द्राय वज्रिणे ॥ १३ ॥ ऋग्वेद ३। ५३ ॥ जन्मन् जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ॥ ऋ० ३। १। २१। इत्यादि यहां भी कुशिक और विश्वामित्र का सम्बन्ध देखते हैं। एक सूक्त के विश्वामित्र और जमदग्नि दोनों ऋषि हैं और ऋचा में भी दोनों नाम आए हैं यथा "सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नीदमे" ऋ० १०। १६७। ४। पुराणों के अनुसार विश्वामित्र की बहिन सत्यवती के पुत्र

किन्तु वैदिक आशय क्या है इसका संक्षेप वर्णन चतुर्दश-भुवन में देखिये। वेदों में विश्वामित्रादिकों की न कोई वंशावली और न कोई अनित्य इतिहास है। वसिष्ठ और विश्वामित्र की शत्रुता का गन्ध भी वेदों में नहीं पाया जाता। सुप्रसिद्ध ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन दोनों के वैर की कोई चर्चा नहीं। महाभारत वाल्मीकीय रामायण से लेकर आधुनिक ग्रन्थ तक वैसी चर्चा पाई जाती है। मैं वारम्वार लिख चुका हूं कि महाभारत पुराणादि में भी शतशः गाथाएँ केवल रूपकालङ्कार में लिखी गई हैं जिनको आजके कतिपय पुरुष तथ्य मान इतिहास समझते हैं। इस में भी किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं कि उन रूपितालङ्कारों का स्वरूप बहुत परिवर्तित होता चला आया है जिस से झटिति सत्यता का पता नहीं लगता। महाभारत आदि पर्व अध्याय १७४ में लिखा है "कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ। गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः। तस्य धर्म्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः। विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः" कान्यकुब्ज देश के राजा कुशिक के पुत्र गाधि हुए* और गाधि के पुत्र

जमदग्नि हैं अर्थात् विश्वामित्र के भागिनेय (भांजा) जमदग्नि हैं। किन्तु वेदों में इस सब का अध्यात्म तात्पर्य्य है। "विश्वामित्र ऋषिः" ऐसा पद यजुर्वेद १३। ५७ में आया है शतपथ इसका अर्थ करता है 'श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः'। ८। १॥

*प्राचीन ग्रन्थों में गाधि के स्थान में गाथी शब्द आता है।

विश्वामित्र हुए। परन्तु वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड सर्ग ३४ में* लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र कुश के वैदर्भी नाम की स्त्री में कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरजा और वसु नाम के चार पुत्र हुए। कुशनाभ के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध १५ वें तथा प्रथम अध्याय में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि। मरीचि के पुत्र कश्यप। कश्यप के पुत्र विवस्वान्। विवस्वान् के पुत्र मनु। मनु के पुत्र सुद्युम्न। सुद्युम्न के पुत्र पुरूरवा। पुरूरवा के पुत्र विजय। विजय के पुत्र भीम। भीम के पुत्र काञ्चन। काञ्चन के पुत्र होत्र। होत्र के पुत्र जह्नु। जह्नु के पुत्र पुरु। पुरु के पुत्र बलाक। बलाक के पुत्र अजक। अजक के पुत्र कुश। कुश के पुत्र कुशाम्बु। कुशाम्बु के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हैं। महाभारत रामायण और भागवत को मिलाइये वंशावली में कितना भेद है। तब किस प्रकार यह इतिहास माना जाय और ये ग्रन्थ सत्य माने जांय। महाभारत का झुकाव वेदार्थ की ओर रहता है। भागवत आदि उसका यथार्थ इतिहास बना देते हैं।

कान्यकुब्ज देश—इस देश का कान्यकुब्ज नाम कैसे हुआ इस की कथा वाल्मीकि रामायण में विस्तार से उक्त

---

* सर्ग अध्याय आदि का पता आज कल बड़ा गड़बड़ हो रहा है अतः ग्रन्थ देखकर पता लगालेना उचित है।

है। "कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशत मनुत्तमम्। जनयामास धर्म्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ॥११॥ रा०। बा०। सर्ग ३४। राजा कुशनाभ की घृताची नाम की स्वर्गवेश्या में १०० एक सौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वायु देवता शत कन्याओं को एक समय उद्यान भूमि में देख अति व्याकुल हो इन से बोले कि आप सब ही मेरे साथ विवाह कर लीजिये। कन्याओं ने मिलकर कहा कि "अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां किल मारुत। प्रभावज्ञाः स्म ते सर्वाः किमस्मानवमन्यसे ॥ ३४। १८। हे मारुत! आप सब प्राणियों के भीतर विचरण कर रहे हैं आप का प्रभाव हम जानती हैं। हमारा निरादर क्यों आप करते हैं। कुशनाभ की हम कन्याएँ हैं। अपने कुलमर्य्यादा की रक्षा कर रही हैं। पिताजी हम को जिन के हाथ में समर्पित करेंगे वेही हमारे स्वामी होंगे। इत्यादि बहुत वादानुवाद करने से वायु देव कुपित होके "तासां तद्वचनं श्रुत्वा वायुः परमकोपतः। प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः" ॥२२॥ उन कन्याओं के गात्रों में पैठ तोड़ मरोड़ कर उन कन्याओं को कुब्जाएँ बनादीं। "यद्वायुनाच ताः कन्यास्तत्र कुब्जी कृताः पुरा। कान्यकुब्जमितिख्यातं ततः प्रभृति तत्पुरम्" ॥ २६ ॥ जिस कारण वायु ने उन कन्याओं को वहां कुब्जाएँ करदीं अतः उस नगर का नाम कान्यकुब्ज हुआ। पश्चात् इन १०० शत कन्याओं का विवाह चूली

राजा के पुत्र ब्रह्मदत्त से हुआ है। ऐसे २ शतशः गप्प रामायण महाभारत में भी बहुत से भरे पड़े हुए हैं। यह ब्रह्मदत्त भी किसी गन्धर्वी के उदर से व्यभिचार से उत्पन्न हुआ था ॥

<u>विश्वामित्र और वसिष्ठ का झगड़ा</u>—महाभारत आदि पर्व अध्याय १७४ में लिखा है कि एक समय विश्वामित्र अरण्य में शिकार करते हुए प्यास से अति व्याकुल हो वसिष्ठजी के आश्रम में पहुंचे। वाल्मीकि-रामायण में भी बालकाण्ड अध्याय ५१ से इस कथा को देखो। राजा को आए हुए देख वसिष्ठजी यथाविधि सत्कार कर बोले कि हे राजन् विश्वामित्र! आज रात्रि आप ससैन मेरी कुटी को सुशोभित कीजिये, विश्वामित्र ने कहा कि आप वन में तपस्वी हो सत्य की उपासना कर रहे हैं। मेरे साथ बहुत से आदमी हैं अतः क्षमा मांगता हूं इस समय मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। वसिष्ठ के बारम्बार हठ करने पर विश्वामित्र ठहर गए। सब कोई चिन्ता करने लगे कि ऋषि के निकट इतनी धन सामग्री कहां से आवेगी, कैसे इतनी सेना को खिला सकेंगे। न कहीं किसी को पकाते हुए देखते न आग न पानी न आसन न वासन। क्या यह ऋषि दिल्लगी तो नहीं कर रहे हैं। रात्रि में हम सब भूखे तो नहीं मरेंगे। इस प्रकार के संकल्प विकल्प से व्याकुल हो ही रहे थे कि वसिष्ठजी की आज्ञा से यथा योग्य आसन पर विश्वामित्र और सेना के सब

पुरुष बैठाए गए । वे आश्चर्य से देखते हैं कि जिस की जिस पदार्थ पर रुचि है वही पदार्थ उस की पत्तल पर परोसा हुआ है । राजा विश्वामित्र को भी विस्मय होरहा है, ऐसे २ त्रिलोक दुर्लभ, विविध प्रकार के लेह्य, चोष्य, पेय, भोज्य, भोजन कहां से आते हैं । भोजन कर वे सुसंतुष्ट हुए । किन्तु ऋषि की ऐसी अचिन्त्य विभूतियों को देख विश्वामित्र अति अस्तव्यस्त हो शबला नन्दिनी कामधेनु की सिद्धि का पता लगा वसिष्ठ के निकट जा बोले कि हे ऋषे ! 'अर्बुदेन गवां ब्रह्मन् मम राज्येन वा पुनः । नन्दिनीं सं प्रयच्छस्व भुंक्ष्व राज्यं महामुने' । महाभारत ॥ 'ददाम्येकां गवां कोटीं शबला दीयतां मम' । रामायण ॥ आप एक अर्बुद गायें लेवें । सम्पूर्ण मेरा राज्य ही लेकर भोग करें किन्तु यह नन्दिनी गौ मुझे दे दीजिये । मैं राजा हूं । मैं इस गौ से बहुत उपकार कर सकूंगा । आप को ऐसी गाय से क्या प्रयोजन । वसिष्ठ ने बहुत समझा कर कहा कि यह नन्दिनी कदापि मुझ से अलग नहीं हो सकती आप जैसा चाहें सो करें ॥

विश्वामित्र उवाच—क्षत्रियोऽहंभवान् विप्रस्तपःस्वाध्यायसाधनः । ब्राह्मणेषु कुतो वीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु । अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम् । स्वधर्म्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम् ॥ वसिष्ठउवाच—बलस्थश्चासि राजा च बाहुवीर्य्यश्च क्षत्रियः । यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु मा त्वं विचारय ॥ महा० ॥ विश्वामित्र ने कहा

कि मैं क्षत्रिय हूं आप ब्राह्मण हैं। आप में वीर्य्य कहां! एक अर्बुद गौ देने पर भी यदि आप इस नन्दिनी को नहीं देते हैं तो मैं भी अपना धर्म्म न छोड़ूंगा बलात् गौ ले जाऊंगा। यह सुन वसिष्ठ ने कहा एवमस्तु आप जैसा चाहें शीघ्र ही वैसा कीजिये। विश्वामित्र बहुत विवाद के पश्चात् नन्दिनी को खोल कोड़े से खूब पीटते हुए अपनी सेना से लिदा चले। वह नन्दिनी हुंकार भरती हुई वसिष्ठ के पास आकर बोली कि क्या आप मुझे त्यागते हैं इस पर वसिष्ठ ने कहा कि "क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम्। क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते"। म० आ०। १७५॥ क्षत्रियों का बल तेज और ब्राह्मणों का बल क्षमा है। मुझे क्षमा प्राप्त है। यदि तेरी रुचि हो तो जा। मैं तुझे त्यागता नहीं यदि तू अपने बल पर ठहर सकती है तो रहजा। मैं इस में कुछ नहीं कहता। ऐसी इच्छा वसिष्ठ की देख क्रोधाग्नि से सूर्य्य की ज्वाला के समान देदीप्यमाना हो वह नन्दिनी अपनी सिद्धि के बल से पह्लव, द्राविड, शक, यवन, शबर, कांचि, शरभ, पौण्ड्र, किरात, सिंहल, वर्बर, वश, चिवक, पुलिंद, चीन, हून, केरल और म्लेछों के शतशः गणों को पैदाकर विश्वामित्र की सेना के साथ युद्ध करने लगी। महाभारत आदि पर्व १७५। क्षण मात्र में विश्वामित्र की सेना छिन्न भिन्न हो इतस्ततः भाग गई। विश्वामित्र को बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ "धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्"

ऐसा कहते हुए राज्य त्याग वह तप करने को चले गए। पश्चात् ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए इत्यादि कथा इस समय घर २ प्रसिद्ध है ॥

वसिष्ठ के पुत्रों को मरवाना—परास्त हो तप करते हुए भी विश्वामित्र वसिष्ठ के अनिष्ट करने से विमुख नहीं हुए। प्रथम राजा कल्माषपाद को अपने पक्ष में कर उस से वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने मरवाया पुनः "शक्तिं तन्तु मृतं दृष्ट्वा विश्वामित्रः पुनः पुनः। वसिष्ठस्यैव पुत्रेषु तद्रक्षः सन्दिदेश ह" शक्ति को मृत देख अन्य पुत्रों को खाने के लिये उस राक्षस को भेजा। वह सिंह व्याघ्र के समान वसिष्ठ के सब पुत्रों को निगल गया ॥

वसिष्ठ की व्यग्रता—विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्रों को घातित देख महा पर्वत के समान अपने तप में स्थिर रह किसी प्रकार उस शोक को वसिष्ठ धारण करते रहे, किन्तु अन्ततो गत्वा परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए। आत्महत्या की चिन्ता करने लगे। सुमेरु पर्वत के अन्त्य शिखर पर चढ़ वहां से गिरे किन्तु शिलाओं का ढेर उनके लिये तूलराशि होगए, उस पतन से वे न मरे। तब वह अग्नि को प्रज्वलित कर उसमें जा घुसे किन्तु अग्निदेव इन्हे भस्म करने में सर्वथा असमर्थ रहे। तब बहुत बड़ी शिला कंठ में बांध समुद्र में जा कूदे। समुद्रदेव ने भी इन्हें बाहर निकाल तट पर रख दिया। इस प्रकार अपने को घात

करने में असमर्थ देख परम खिन्न हो पुनः आश्रम लौट आए। वहां भी पुत्रों से आश्रम को शून्य देख व्याकुल हो पृथिवी पर भ्रमण ही करने लगे ॥

विपाशा और शतद्रु—इतने में ही वर्षा ऋतु आगई जल से नदियों को खूब भरी देख अपने अंगों को पाशों (फांसों) से बांध किसी एक नदी में जा गिरे किन्तु वह नदी ऋषि के प्रताप से डर सब पाशों को काट उनको तट पर लेआई। "उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः"। तब जिस कारण पाशों से छूट इस नदी से उत्तीर्ण हुए अतः ऋषि ने इसका नाम 'विपाशा' रख दिया। पुनः शोकान्वित हो भ्रमण करते हुए वे किसी दूसरी नदी में जा गिरे। वह नदी भी भय से अनेकमुखी हो भागगई, वे तट पर आ पहुंचे। 'सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा। शतधा विद्रुता यस्मात् शतद्रुरिति विश्रुता'। वह नदी जिस कारण अग्निसम उस विप्र को देख शतमुख हो बहने लगी अतः तब से वह शतद्रु नाम से विख्यात हुई ॥

वसिष्ठ का आश्वासन—तब वसिष्ठ अपने को सर्वथा अवध्य जान आश्रम को लौट आए वहां देखते हैं कि शक्ति पुत्र के समान ही कोई वेद पढ़ रहा है। शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती थी। इसी से एक बालक का वेद पढ़ता हुआ द्वादश वर्ष के पश्चात् जन्म हुआ "अदृश्यन्त्युवाच।

ममं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते। समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यसतोमुने"। अदृश्यन्ती ने कहा हे मेरे परम पूज्य पितृवदाराध्यदेव! आपके पुत्र से मेरी कुक्षि (पेट) में यह बालक उत्पन्न हुआ है। वसिष्ठजी वंशधर सन्तान देख पुनः स्वप्रकृतिस्थ हुए और उसका नाम पराशर रक्खा और जिस राजा कल्माषपाद ने विश्वामित्र के कहने से वसिष्ठ के पुत्रों को खाया था उसको भी अपने वश में लाए॥

कल्माषपाद कौन है—श्रीमद्भागवत ९।९ में सुदास राजा का पुत्र कल्माषपाद कहा गया है। इसका पहला नाम मित्रसह है। उन्हों ने बन में किसी एक राक्षस को माराथा। उसका भाई बदला लेने के अभिप्राय से पाचक का रूपधर इसी राजा के यहां रसोइया नियुक्त हुआ। इसने गुरु वसिष्ठ को एक दिन मानवमांस खिला दिया इस पर परम क्रुद्ध हो वसिष्ठ ने राजा को शाप देदिया कि तू राक्षस हो जा। राक्षस होने पर उसका पैर कल्माष अर्थात् नाना रंगवाला या काला होगया तबसे कल्माष-पादही कहलाने लगा। महाभारत में लिखा है कि वसिष्ठ पुत्र शक्ति और कल्माषपाद रास्ते के लिये लड़ने लगे। राजा ने शक्ति को कोड़े से पीटा तब शक्तिने शाप दिया कि तू राक्षस हो जा। दूसरी घटना यह हुई कि किसी एक ब्राह्मणने बनमें राजा को कहा कि मुझे समांस भोजन करवाओ। राजाने कहा कि मैं राजधानी में जाके

भोजन भेजता हूं आप यहां ही प्रतीक्षा करें, वह गृह पर आकर भूलगए। दो पहर रात्रि में स्मरण कर सूद (पाचक) को बुला यह बात कही। सूदने कहा कि पाकशाला में इस समय मांस नहीं है तब राजाने कहा कि "अप्येनं नरमांसेन भोजयेति पुनः पुनः" यदि मांस नही है तो नर मांस ही सही। उस सूदने नर मांस ला पका उस विप्र के पास लेजा कर खिलाया। विप्र ने नर मांस देख राजा को राक्षस होने का शाप दिया। इन दो शापों से वह मित्रसह राक्षस होगया। राक्षस होके प्रथम वसिष्ठ पुत्र शक्ति को ही खागया। इत्यादि कथा महाभारत आदि पर्व अध्याय १७६ में देखिये। ऋग्वेद में कल्माष वा कल्माषपाद शब्द नहीं आया है। मित्रसह शब्द का भी प्रयोग नहीं है॥

भारतीय कथा का आशय।

महाभारतादि में जैसी कथा लिखी है संक्षेप से उस का वर्णन लिखा गया है। अब इसका आशय यहां दरशाना बाकी है। इन कथाओं में कईएक उन्नति देखते हैं। वेद में शक्ति, पराशर, शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती आदि की कहीं चर्चा नहीं, विश्वामित्र और वसिष्ठ की शत्रुता और वसिष्ठ की नन्दिनी की कहीं गन्ध नहीं। वसिष्ठ के ऊपर वारम्वार विश्वामित्र का आक्रमण और पुनः विश्वामित्र का ब्राह्मण होना इत्यादि किञ्चिन्मात्र भी अंश वेद

में नहीं । पूर्व वर्णन से यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत के बहुत पहले से वसिष्ठ के सम्बन्ध में कुछ ऐसी कथाएँ चली आती थीं जिन का पूरा विवरण तो कहीं इस समय नहीं मिलता किन्तु शाट्यायन और ताण्ड्य महाब्राह्मण आदिकों में किञ्चित् अंशमात्र का उपन्यास है । महाभारत स्वयं कहता है कि "इदंवासिष्ठ माख्यानं पुराणं परिचक्षते" इस वसिष्ठ आख्यान को लोक बहुत पुराण बतलाते आए हैं । अतः इसके बहुत परिवर्तन और समय समय पर न्यूनाधिक्य के कारण आशय भी बदलते गए। मैं यहां क्रमशः दो एक आशय प्रकट करता हूं—१ वसिष्ठ कौन है ? वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में इन्द्रियों को वश में लाने की कथाएँ बहुत आया करती हैं। येही देव और असुर हैं । क्षण में ही ये इन्द्रिय देव और क्षण में ही असुर बन जाते हैं। प्रत्येक आदमी अपने २ जीवन में देखता है कि इन्द्रियों का कैसा महाघोर संग्राम कभी २ हुआ करता है, इसी का नाम देवासुर संग्राम है । शुनःशेप, त्रित, दीर्घतमा आदिकों की कथा वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में देखिये । उसी प्रकार की रूपकालंकार से यह भी एक कथा ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में बनाई गई है, कथाएँ इस प्रकार मिश्रित होगई हैं कि इनका पता लगाना कठिन काम है ॥

वसिष्ठ कौन है—प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः। यद्वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठोऽथो यद्वस्तृतमो वसति तेनोऽएव वसिष्ठः। श०

का० ८।अ० १।ब्रा० १॥ यो वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति। वाग्वाव वसिष्ठः। छा० उ० ५।१।२॥ योह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा। बृ० उ० ५।१॥ इत्यादि अनेक प्रमाण से सिद्ध है कि ऐसे स्थलों में इन्द्रियों का ही नाम वसिष्ठ है। यहां प्राण विशिष्ट धर्म्मनिष्ठ, वेदवाणी निपुण परम तपस्वी जीवात्मा का नाम वसिष्ठ है "मित्र एव सत्यः। वरुणएव धर्म्मपतिः"। शतपथ ५।३। मित्र ही सत्य है और वरुण धर्म्मपति है। जब सत्यधर्म्म और धर्म्म का अधिष्ठातृ देव विवेक विचार आदि दोनों मिलते हैं तबही शुद्ध विशुद्ध जीवात्मा का प्रकाश उर्वशी द्वारा होता है। ये जो वैदिक विविध क्रियाएँ हैं वही उर्वशी अप्सरा है क्योंकि इसीको बहुतसे वैदिक ऋषि चाहते हैं 'उरवो बहव उशन्ति इच्छन्ति यां सा उर्वशी' बहुत प्रकार की क्रियाएँ होती हैं अथवा उनका अप=जल से सम्बन्ध है अतः उसको अप्सरा कहते हैं। उसी परम पवित्रा परम सुन्दरी क्रिया को लक्ष्य करके अर्थात् वैदिकी क्रिया को जगत् में प्रसिद्ध करने के लिये मित्र व वरुण शुद्ध जीवात्मा को जन्म देते हैं। उस जीवात्मा का सब ही आदर करते हैं। हृदय रूप पुष्कर के ऊपर बैठा ध्यान करते हैं। ऐसा शुद्ध जीव भी मोहवश नाना दुःख भोगता है। यह विचित्र लीला इस आख्यायिका में दिखलाई जाती है यथा—यह अवि-

वेकी दुष्ट मन ही विश्वामित्र है। ज्ञान, विज्ञान, सत्य, दान तप आदि सकल शुभ कर्म्मों का यही दुष्ट मन महा शत्रु बनजाता है। अतः यह दुष्ट मन सबका शत्रु होने के कारण विश्वामित्र है, इन्द्रियगणही इसकी सेनाएँ हैं। उन अविवश इन्द्रियरूप सेनाओं को लेकर यह विश्वामित्र सहस्रों की शिकार कर रहा है। यहां ऋषि विश्वामित्र से तात्पर्य्य नहीं। ऋष्यर्थ में विश्व+मित्र शब्द ही विश्वामित्र बनजाता है। जो सत्य धर्म्म को नष्ट करे वह अवश्य विश्वामित्र कहावेगा। शुद्ध पवित्र विवेकशालिनी बुद्धि ही नन्दिनी है, यही उपासकों को विविध अभिष्ट देती है अतः यही कामधेनु है। बुद्धिमान् पुरुष इसी बुद्धि से संसार को वश में कर लेते हैं। यही अद्भुत २ पदार्थ उत्पन्न करती है। अब इतनी टिप्पणी के साथ आशय पर ध्यान दीजिये—

आश्रम में विश्वामित्र का प्रवेश—बड़े २ तपस्वी योगी ऋषियों का भी मन चञ्चल होजाता है। सांसारिक भोगविलास बलात्कार उपासक को अपनी ओर खैंच लेते हैं अतः गीता में कहा जाता है कि "अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः"। महाभारत आदिकों में इसके अनेक उदाहरण कहे गए हैं सोभरि जल में तप करते थे तो भी तपोभ्रष्ट हुए। भोगविलास की ओर मन का होना ही मानों विश्वामित्र का वसिष्ठ के हृदयरूप आश्रम

में प्रवेश है। प्रथम उपासक इसका बड़ा आदर करता है। यही दुष्ट मनोरूप विश्वामित्र को नाना भोगों से वसिष्ठ कर्तृक तृप्त करना है ॥

महासंग्राम—इस प्रकार जब मन देखता है कि यह मेरे वश में आगया है किन्तु इसके पास एक बुद्धिरूपा नन्दिनी है जो कभी २ रुकावट डालती है, प्रथम इसका ही हरण करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि जब आदमी भोगविलास में फंसता है तब इसकी बुद्धि प्रथम नष्ट होती है। अतः इस बुद्धिरूपा नन्दिनी को विश्वामित्र हरण करना चाहता है परन्तु बहुत दिनों से परिपक्व वेदों तथा विवेकों से सिक्ता बुद्धि शीघ्र नष्ट नहीं होती। दुष्ट मन और विवेकशालिनी बुद्धि में कर्त्तव्याकर्त्तव्य के वास्ते महाभयङ्कर संग्राम होता है। बुद्धि जीत जाती है। मन भाग जाता है, परन्तु दुष्ट मन कभी निश्चिन्त नहीं होता ॥

वसिष्ठ पुत्र शक्ति का नाश—यहां देखते हैं कि वसिष्ठ के पास ऐसी नन्दिनी रहने पर भी वह इनकी रक्षा करने में समर्था नहीं होती जो नन्दिनी सहस्रों भोज्य पदार्थ उत्पन्न कर क्षण मात्र में विश्वामित्र की सेना को तृप्त कर देती है, जो अनेक प्रकार की सेनाओं को उत्पन्न कर विश्वामित्र की सेनाओं को छिन्न भिन्न कर भगा देती है वह अब कहां गई जो वसिष्ठ के पुत्र को भी बचा न सकी। इसमें गूढ़ रहस्य यह है कि जब उपासक मनको

चञ्चल बना देता तब वह बुद्धि कुछ काम नहीं कर सकती प्रथम उपासक के मानसिक आत्मिक और शारीरिक बलों को वह मन नष्ट कर देता है। अतः लिखा है कि वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने कल्माषपाद से मरवा दिया। मानसिक आदि बलही प्रिय पुत्र हैं। इसी से परम रक्षा होती है। यही वसिष्ठ (जीवात्मा) का परम-प्रिय पुत्र शक्ति है जिस के नष्ट होने से जीवात्मा विविध दुःखों को भोगता है ॥

वसिष्ठ की व्यग्रता—जब मन दुष्ट हुआ। बुद्धि नष्ट हुई। शक्ति जाती रही तब मनुष्य क्योंकर पागल न हो। अब वसिष्ठ पागल होकर कभी कामरूप महाग्नि में भस्म होता है कभी पापरूप महासमुद्र में गिरता है कभी शोकरूप चट्टानों पर गिरकर चूर्ण २ होता है अथवा विविध मानसिक दुःखों से पीड़ित होता है यही वसिष्ठ का अग्नि आदि में भस्म होना आदि है, परन्तु वह कहीं मरता नहीं इस प्रकार विविध ठोकरों को खाता हुआ जब कभी इसे होश आता है तब वह पुनः चेत जाता है और सब विघ्नों को नाशकर वसिष्ठ का वसिष्ठ बन जाता है, यही वसिष्ठ का पुनः आश्रम में प्रवेश है ॥

पराशर की उत्पत्ति—पुनः जब वसिष्ठ आश्रम में लौट कर आता है तो देखता है कि कोई बालक वेद ध्वनि कर रहा है उस से प्रसन्न हो पुनः स्वस्थ होजाता है। ठीक है

आध्यात्मिक शक्ति का अवश्य कुछ फल मिलता ही है। इस शक्ति की भी शक्ति अदृश्य है। अतः शक्ति की स्त्री का नाम 'अदृश्यन्ती' है, इस से पराशर उत्पन्न होता है 'परान् शत्रून् आशृणाति अथवा पराशृणाति' अर्थात् निखिल विघ्न रूप शत्रुओं को नाश करने हारा विवेक ही यहां पराशर है क्योंकि यह वेद पढ़ रहा है, भाव इसका यह है कि जब पुनः विवेक उत्पन्न होता है तब वेद शास्त्रों में चित्त लगने लगता है तब सब विघ्न स्वयं नष्ट हो जाते हैं ॥

कल्माषपाद—जिसके बल पर चलते हैं वह पैर है। कल्माष=विविधवर्ण वा काला। ज्ञान विज्ञान युक्त धर्म्म ही मनुष्य का पैर है जब यह बिगड़ जाता है तब इसकी शक्ति कैसे रह सकती है। अतः लिखा है कि यह प्रथम 'मित्रसह' नामसे प्रसिद्ध था, और वसिष्ठ का यजमान भी था पश्चात् यही राक्षसरूप होके शक्ति को खागया। निःसन्देह धर्म्म ही आत्मरूप वसिष्ठ का सहायक है, इसी यजमान से आत्मरूप पुरोहित विविध धन पाता रहता है। परन्तु जब आत्मरूप वसिष्ठ इसका निरादर करता है तब निःसन्देह वह बिगड़ जाता है और आत्मा को भी बिगाड़ना आरम्भ करता है "धर्म्म एव हतोहन्ति" ॥

विश्वामित्र का वारम्वार आक्रमण—भिन्न २ स्थलों में भिन्न २ कथा है, ग्रन्थ के विस्तार भय से मैं सब को पृथक् २ नहीं बतला सकता। महाभारत आदि पर्व में

वारम्वार आक्रमण की कथा नहीं है, रामायण में इसका विस्तार से वर्णन है। निःसन्देह दुष्ट मन वारम्वार तपस्वी आत्मा को भी दूषित करना चाहता है परन्तु जो उपासक परीक्षा में स्थिर रहते हैं वे सदा विजयी होते आए हैं। यही इसका आशय है॥

विश्वामित्र का ब्राह्मण होना—जब यह ब्राह्मण होजाता है तब पुनः वसिष्ठ के साथ वैर नहीं रखता। ठीक है। जबतक यह मन राजस और तामस भाव में लगा रहता है तबतक आत्मा को दुःख ही देता रहता है जब यह भी आत्मा के समान सात्त्विक बन जाता है तब दोनों मिलकर जगत् में महान् कल्याण को सिद्ध करते हैं। यही विश्वामित्र का ब्राह्मण होना है। उपनिषदों में आया है तप वा कर्म्म करने से ये इन्द्रियगण मनःसहित देव बनते हैं। अतः यहां विश्वामित्र का तपश्चरण के पश्चात् ब्राह्मण होना लिखा है॥

कथा की तुलना—लोग कहेंगे कि यह केवल एक छोटी सी बात है परस्पर मनःसहित इन्द्रियों और आत्मा के साथ युद्ध का इतना बड़ा वर्णन करना असंगत प्रतीत होता है इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि क्या ऐसे ही घोरयुद्ध का वर्णन बुद्धदेव और कामदेव के साथ नहीं है? क्या सचमुच देहधारी कामदेव के साथ बुद्ध का युद्ध हुआ था। क्या यथार्थ में महादेव के ऊपर

देहधारी काम ने चढ़ाई की थी, जिस को उन्होंने भस्म कर दिया। क्या सचमुच ईसा को कहीं शैतान लेगए थे और कई दिनों तक उन को दुःख देते रहे ? इत्यादि आलङ्कारिक कथा प्राचीन काल में बहुत बनाई जाती थी। इसी वसिष्ठ और विश्वामित्र की कथा का प्रतिरूप बुद्ध के साथ कामदेव का युद्ध है ॥

असंगति किस पक्ष में—इतिहास मानने वालों से मैं पूछता हूं कि क्या किसी समय में ऐसी गौ हो सकती है जो सारी सृष्टि रचने की भी शक्ति रखती हो ? क्या विश्वामित्र कोई पागल राजा था कि एक गौ के लिये अपना सम्पूर्ण राज्य देता था, या गौ की ऐसी शक्ति देखकर भी उस से उस को भय नहीं उत्पन्न हुआ कि जिसके ऐसे सामर्थ्य हैं उसे मैं बलात्कार कैसे लेजाऊंगा। पुनः ऐसी गौ के रहते हुए भी वसिष्ठ के पुत्रों की रक्षा क्यों न हुई ? ब्राह्मण होने ही के लिये विश्वामित्र क्यों मरता था ? क्योंकि राजाओं की भी थोड़ी प्रतिष्ठा नहीं थी। क्या यह सम्भव है कि एक क्षत्रिय राजा राक्षस होके अपने पुरोहित को ही खा जाय ? इत्यादि विषयों पर ध्यान देने से इस कथा का आलङ्कारिकत्व सिद्ध होता है ॥

२ द्वितीय आशय—इस का अन्य आशय इस प्रकार होता है। महाभारत के विषय में यह कहा जाता है कि

"भारत व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः" वेदों के ही अर्थों को नाना रूपों में वह वर्णन करता है। मैं भी इस मत से बहुधा सहमत हूं। महाभारत शब्दों तथा भावों को कुछ परिवर्तन कर वेदार्थ को दरशाता है। वेद में शुतुद्री। भारत में शतद्रु। वेद में च्यवान। भारत में च्यवन। वेद में दध्यङ्। भारत में दधीचि इस प्रकार के अनेक उदाहरण पावेंगे। जैसे महाभारत शब्दों को हेर फेर कर उस २ का निज अभीष्ट अर्थ बना लेता है वैसे ही वेदार्थ में भी कुछ बदल कथा रचता है। वेदों में दन्त्य सकार से, भारत में तालव्य शकार से वसिष्ठ लिखा जाता है। व्युत्पत्ति भी इस प्रकार ही प्रायः करते हैं। महाभारत वेदार्थ से बहुत दूर नहीं जाता है, यह भी प्राचीन ग्रन्थों का ही अधिकांश में संग्रहकर्त्ता है। महाभारत दिखलाना चाहता है कि सत्य धर्म्म के नियमों को भी लोग निरुपद्रव नहीं रहने देते। अब इन विषयों को इस आख्यान में विचार दृष्टि से देखिये॥

विश्वामित्र शब्द—विश्वामित्र ऐसा नाम क्यों रक्खा गया। पाणिनि व्याकरण के अनुसार "मित्रे चर्षौ" ऋषि अर्थ में विश्वामित्र बनता है किन्तु यह अभी तक राजा है राजर्षि भी नहीं फिर विश्वामित्र इस नाम से यह कैसे पुकारा जा सकता है और वेद में विश्वामित्र और वसिष्ठ के वैर की कोई चर्चा नहीं अतः लोक में यह शब्द कुछ

अन्य अर्थ का सूचक है इस में सन्देह नहीं। मैं कह चुका हूं कि सत्य धर्म्म का नाम वसिष्ठ है। उस को जो नष्ट करना चाहेगा वह अवश्य शत्रु बनेगा अतः विश्व के अमित्र अर्थ में यह विश्वामित्र शब्द है। अब विश्वामित्र राजा क्यों कहाता इसका भी कारण यह है कि सात्त्विक पुरुष सदा धर्म्म में स्थिर ही रहते हैं। तामस जन कुछ कर ही नहीं सकते। केवल राजस पुरुष ही हलचल मचाने हारे होते हैं, वे ही अधिकांश धर्म्म नियमों को उल्लंघन कर प्रजाओं में उपद्रव करते रहते हैं। अतः यह विश्वामित्र राजा कहता है। धर्म्म केवल तप और बुद्धि पर निर्भर है। वही बुद्धि नन्दिनी है। यही काम धेनु है। वह उपद्रवात्मक विश्वामित्र राजा प्रथम जगत् से बुद्धि को नष्ट करना चाहता है। परन्तु वह नष्ट नहीं हो सकती। बुद्धि का ही विजय होता है। पुनः परास्त हो धर्म्म के सहायकों को अपना सहायक बना प्रथम नियम की शक्ति को नष्ट कर देता है। अतः इस आख्यान में आता है कि जो मित्रसह प्रथम वसिष्ठ का यजमान था वही विश्वामित्र का सहायक बन शक्ति को खा जाता है। जो धर्म्मरूप मित्र का रक्षक था वह अब भक्षक बन जाता है। जब धर्म्म की शक्ति नष्ट हो जाती है वह धर्म्म व्याकुल होजाता है। धर्म्म देखता है कि जो मेरे पालक थे, जिन की सहायता से मैं उत्पन्न हुआ हूं वह राजवर्ग ही मुझे खाना चाहता है तो इस से अच्छा है मैं मर जाऊं।

यह सोच धर्म्मरूप वसिष्ठ अग्नि, जल, पर्वत, शस्त्रास्त्र, विष आदि सब के निकट मरने को जाता है परन्तु धर्म्म की रक्षा जड़ पदार्थ भी करना चाहते हैं क्योंकि धर्म्म के नियम पर ही वे चल रहे हैं। अतः अपनी शरण में आए हुए धर्म्म को अग्नि आदि कोई भी नष्ट नहीं होने देते। अतः सब स्थान से वह धर्म्म लौट आता है अर्थात् कुछ समय तक राजस पुरुषों के उपद्रव से धर्म्म अस्तव्यस्त सा होजाता। यही आश्रम छोड़ वसिष्ठ का इधर उधर चला जाना है। पश्चात् पुनः प्रजाओं में कोलाहल मचता है। उपद्रव शान्त किया जाता है। स्वयं उपद्रवी धर्म बल देख शान्त होकर पश्चात्ताप करके शुद्ध आचरण बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे भी सात्त्विक बन जाते हैं। यह केवल धर्म का ही प्रभाव है जो राजस पुरुष भी सात्त्विक बन हिंसकप्रवृत्ति से निवृत्त होजाते हैं। अतः यह उपद्रवात्मक विश्वामित्र ब्राह्मण बनता है। दूसरी ओर प्रजाएँ धर्म को पुनः सींचने लगती हैं। धर्म के कर्म आदि पुत्रों की अदृश्यन्ती शक्ति से पराशर अर्थात् समस्त उपद्रवों का विनाश करने हारा पुत्र जन्म लेता है। उस से पुनः वैदिक मार्ग स्थिर होजाता है। अतः पराशर के जन्म से वसिष्ठ की शान्ति होती है॥

<u>कथा की नित्यता</u>—धर्म्म नियम का सदा नाम वसिष्ठ होगा क्योंकि सब के हृदय में अच्छे प्रकार यह वास करता है, इसको सदा मित्र वरुण अर्थात् ज्ञानी और राज

वर्ग मिलकर जन्म दिया करेंगे। इस के जो विरुद्ध होंगे वे विश्वामित्र और कल्माषपाद आदि नामों से पुकारे जायँगे। यह सदा क्षत्र वर्गों का ही पुरोहित अर्थात् शासक रहेगा। यह ब्राह्मण नाम से पुकारा जायगा क्योंकि अधिकांश यह ज्ञानी वर्ग से उत्पन्न होता है। धर्म की शक्ति देख सदा राजस वर्ग ब्राह्मण होने की चेष्टा करेंगे। इत्यादि नित्य भावका सूचक यह आख्यायिका है॥

३ तृतीय आशय—प्रथम दो एक बातें ये हैं। शतपथ के कई स्थलों में लिखा है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग को मिलकर शासन करना उचित है "ब्रह्म च क्षत्रं चाग्निरेव ब्रह्म इन्द्रः क्षत्रं तौ सृष्टौ नानैवास्ताम्। तावब्रूतां न वा इत्थं सन्तौ शक्ष्यावः प्रजाः प्रजनयितुम्। एकं रूप मुभावसावेति तावेकं रूप मुभावभवताम्" शतपथ १०।४॥ आशय यह है कि ब्रह्म और क्षत्र दोनों प्रथम पृथक् २ थे। दोनों ने कहा कि इस प्रकार पृथक् २ होकर प्रजाओं को बना नहीं सक्ते इसलिये आइए दोनो एक रूप होजांय। वे दोनों एक रूप होगए। शतपथ एकादश काण्ड अध्याय छः में यह भी वर्णन आता है कि जनक महाराज ने कतिपय ब्राह्मणों से अग्निहोत्र के प्रश्न पूछे। उनके समाधान से जनक सन्तुष्ट न हुए इस कारण से ब्राह्मण बिगड़ कर लड़ने को तयार होगए। तब "स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्राह्मणा वै वयं स्मो राजन्यबन्धुरसौ यद्यमुं वयं जयेम

क मजैष्मेति ब्रूयाम। अथ यद्यस्मान् जयेद् ब्राह्मणान् राजन्यबन्धु रजैषीरिति नो ब्रूयुः। इत्यादि। याज्ञवल्क्य ने कहा कि हम सब ब्राह्मण हैं। वह राजन्य बन्धु है। यदि हमने उसे जीत ही लिया तो क्या हुआ, किसको हमने जीता, क्या हम कहेंगे। यदि उसने हमको जीत लिया तो लोक कहेंगे कि देखो राजन्यबन्धु ने ब्राह्मणों को जीत लिया इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग में परस्पर विरोध होना आरम्भ होगया था। तीनों वेदों में इन सबकी कोई चर्चा नहीं। हां, ब्रह्म क्षत्र को मिलकर व्यवहार करना चाहिये ऐसा वर्णन यजुर्वेद में आया करता है जिसके उदाहरण प्रारम्भ में ही लिखे गए हैं। यजुर्वेद में यह भी एक बात आती है कि ऐ प्रजाओ! यह राजा जो अभी तुम लोगों की आज्ञा से अभिषिक्त होरहा है वह तुम लोगों का राजा होता है। हम ब्राह्मणों का राजा केवल सोम अर्थात् परमात्मा है। यथा—विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा। यजु० ६। ४०॥ इस प्रकार समीक्षा करके देखते हैं तो प्रतीत होता है कि ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी वर्ग का यथार्थ में कोई राजा नहीं है और होना भी नहीं चाहिये क्योंकि उनके नियम पर जगत् चल रहा है वे

किनके नियम पर चलें। जो सर्वथा ज्ञानपूर्वक धर्म्म नियम पर चलें चलावें वेही ब्रह्म या ब्राह्मण हैं। क्षत्र वा क्षत्रिय वे हैं जो अधिकतया बल से काम लेवें। प्रतीत होता है कि अति प्राचीन काल में वे क्षत्रवर्ग ब्रह्मवर्ग को भी अपने वश में करके सुबद्ध करना चाहते थे। जब २ ऐसी अशुभ इच्छा क्षत्रवर्ग में उत्पन्न होती थी तब २ इन दोनों में महान् कोलाहल मचजाता था। पुनः शान्ति स्थापना होकर धर्म्म के प्रबल नियम बनाए जाते थे। परन्तु यह कब सम्भव है कि उद्दण्ड क्षत्रवर्ग उन नियमों को अच्छे प्रकार निबाह सकें अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों के समय जो इन दोनों वर्गों में वैमनस्य का वीज बोया जारहा था वह समय पा कर बहुत बढ़ गया ॥

पशुराम की कथा भी इसी दशा का प्रमाण है। इसी विरोध के चित्रको महाभारत अपने सामने दिखलाता है। ब्राह्मण के निकट कौनसी शक्ति और क्षत्रिय किस शक्ति पर नाचते हैं। ब्राह्मण कैसे उन्नत होते और क्षत्रिय कैसे अपनी दुर्बलता दिखलाते यह सब वसिष्ठ और विश्वामित्र के जीवन चरित्र से सिद्ध किया गया है। यहां एक बात सदा ध्यान में रखना चाहिये कि ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति का युद्ध नहीं, इनकी स्तुति निन्दा नहीं, जिस



समय ऐसी २ कथा बनाई गई उस समय जाति विभाग नहीं था यदि जाति विभाग होता तो ऐसी कथा कभी देश में प्रचलित नहीं होती। कोई भी क्षत्रिय उसको नहीं सुनता अतः यहां ब्रह्म वा ब्राह्मण पद से विवेकी ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि अर्थ और क्षत्र वा क्षत्रिय पद से शासक बलात्कार कारी परमबलिष्ठ आदि ग्रहण करना चाहिये। अन्त में यजुर्वेद के मन्त्र को पुनः स्मरण दिला इस प्रकरण को यहां ही समाप्त करता हूं ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥
यजुः २० । २५ ॥



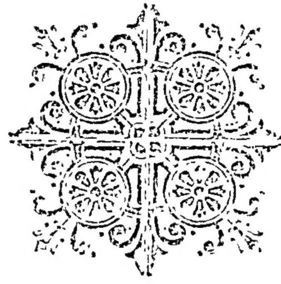
विज्ञापन.

आर्य्य भ्राताओ ! अभी तक वेदों के ऊपर साक्षात् विचार यथार्थरूप से आर्य्यों तथा पौराणिकों में नहीं हुआ है। वेदों पर कितने लाञ्छन लगाए हुए हैं इसको कौन नहीं जानता। प्रत्येक भारतवासी को उचित था कि वह इस ओर पूरा ध्यान देता, परन्तु कई सहस्र वर्षों से यह कार्य्य न होसका। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कई वर्षों से वेद सम्बन्धी लेख लिख आपके निकट पहुंचा रहा हूं। अभी तक मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, मैं इतने से प्रसन्न नहीं हूं, अब मैं आप लोगों की सहायता चाहता हूं कि वेदों के गुप्त २ अर्थ प्रकाशित किये जांय। उदाहरण के लिये यह "वैदिक रहस्य" आपके समीप उपस्थित है। विशेष लिखने की आवश्यक्ता नहीं, यदि आप लोग इस से कुछ लाभ समझते हैं तो इस के ग्राहक बनें और बनावें। अग्रिम मूल्य भेजने वालों को (१०००) एक सहस्र पृष्ठों का ग्रन्थ ३॥=) में मिलेगा। प्रथम भाग (चतुर्दश-भुवन) मूल्य।), द्वितीय भाग (वसिष्ठ-नन्दिनी) मूल्य।=) है॥

अब मैं अपने ग्राहकों और अनुग्राहकों से प्रथम विनय कर शुभ समाचार देता हूं कि अब विलम्ब नहीं होगा। अब वे क्षमा करें। तृतीय भाग भी प्रेस में देदिया गया है बहुत शीघ्र (१०००) पृष्ठ प्रकाशित हो जायंगे। जिन मेरे शतशः भ्राताओं ने इसके विषय में वारम्वार पत्र लिखकर मुझे उत्साहित किया है उन्हें बहुत धन्यवाद देता हूं। वे मेरे मित्र अब इसका प्रचार करें करावें॥

भवदीय—

शिवशङ्कर.



पुस्तक मिलने का पता—

पुस्तकाध्यक्ष,

आर्य्य समाज—कैसर गं

[illegible]

